भाग ९

अमृतवाणी

गूढ़ पदों के सन्देश

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज

।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

अमृतवाणी

सन्तों के गूढ़ पदों के सन्देश

पूज्य स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज के
मुखारविन्द से निःसृत अमृतवाणियों का संकलन

भाग- 9

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं– 5 व 11, मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069, भारत

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं– 5 और 11, मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069, भारत
दूरभाष– 022-28255300
ई-मेल – contact@yatharthgeeta.com
वेबसाइट – www.yatharthgeeta.com

© लेखक **श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज**

संशोधित संस्करण— **जून,** सन् 2026

मुद्रक :

जॅक प्रिण्टर्स प्रा. लि.

जॅक कम्पाऊण्ड, दादोजी कोंडदेव क्रॉस लेन
भायखळा (पूर्व), मुंबई - 400 027, भारत
फोन नं - (0091-22) 2377 2222
वेबसाइट - www.jakprinters.com

ISBN : 978-81-932619-8-9

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया-चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्तस्प्रेरणा

गुरु-वन्दना

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ॥

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.....भारी।।

॥ ॐ ॥

"आत्मने मोक्षार्थं जगत् हिताय च"

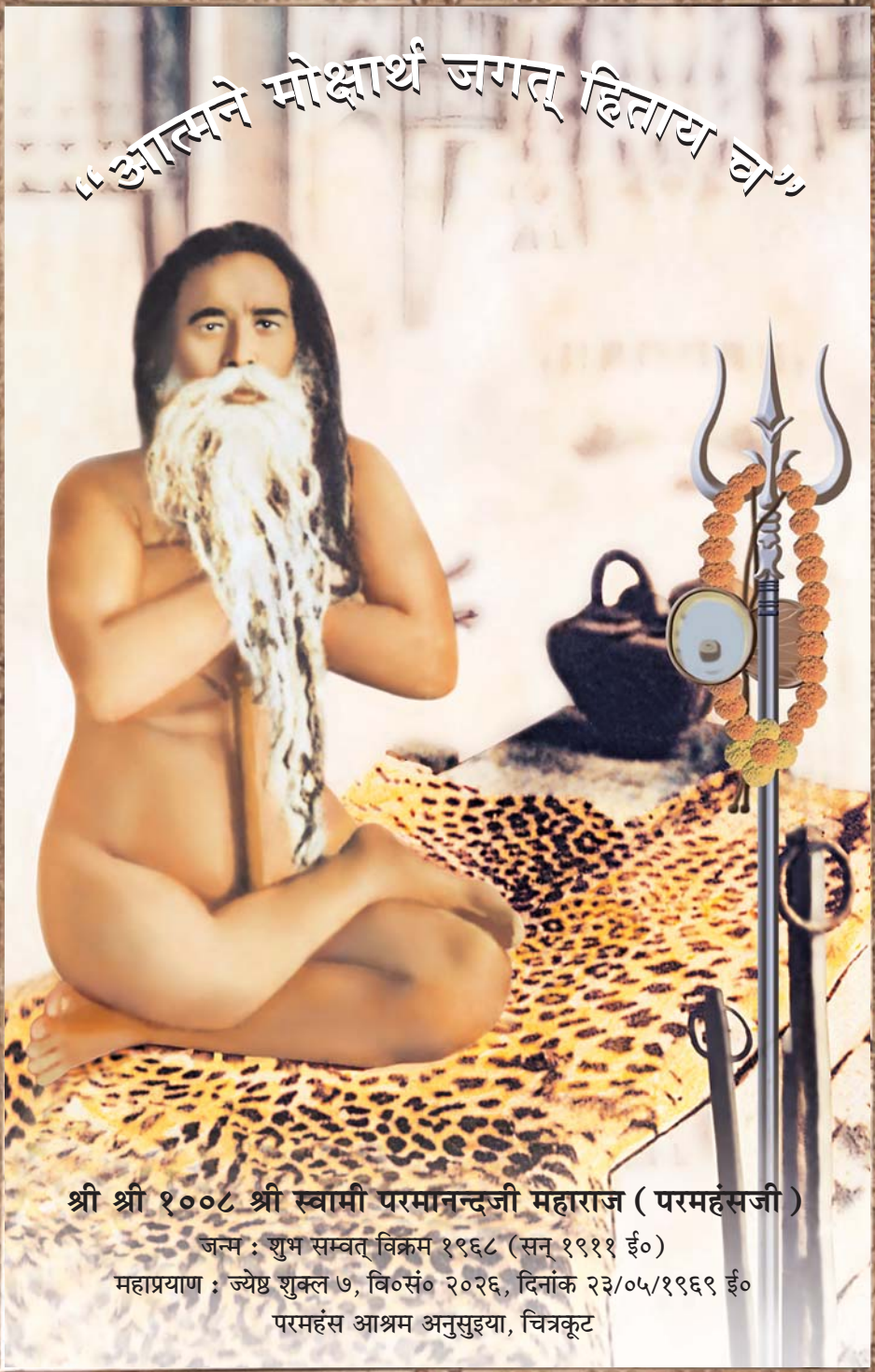

श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६८ (सन् १९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

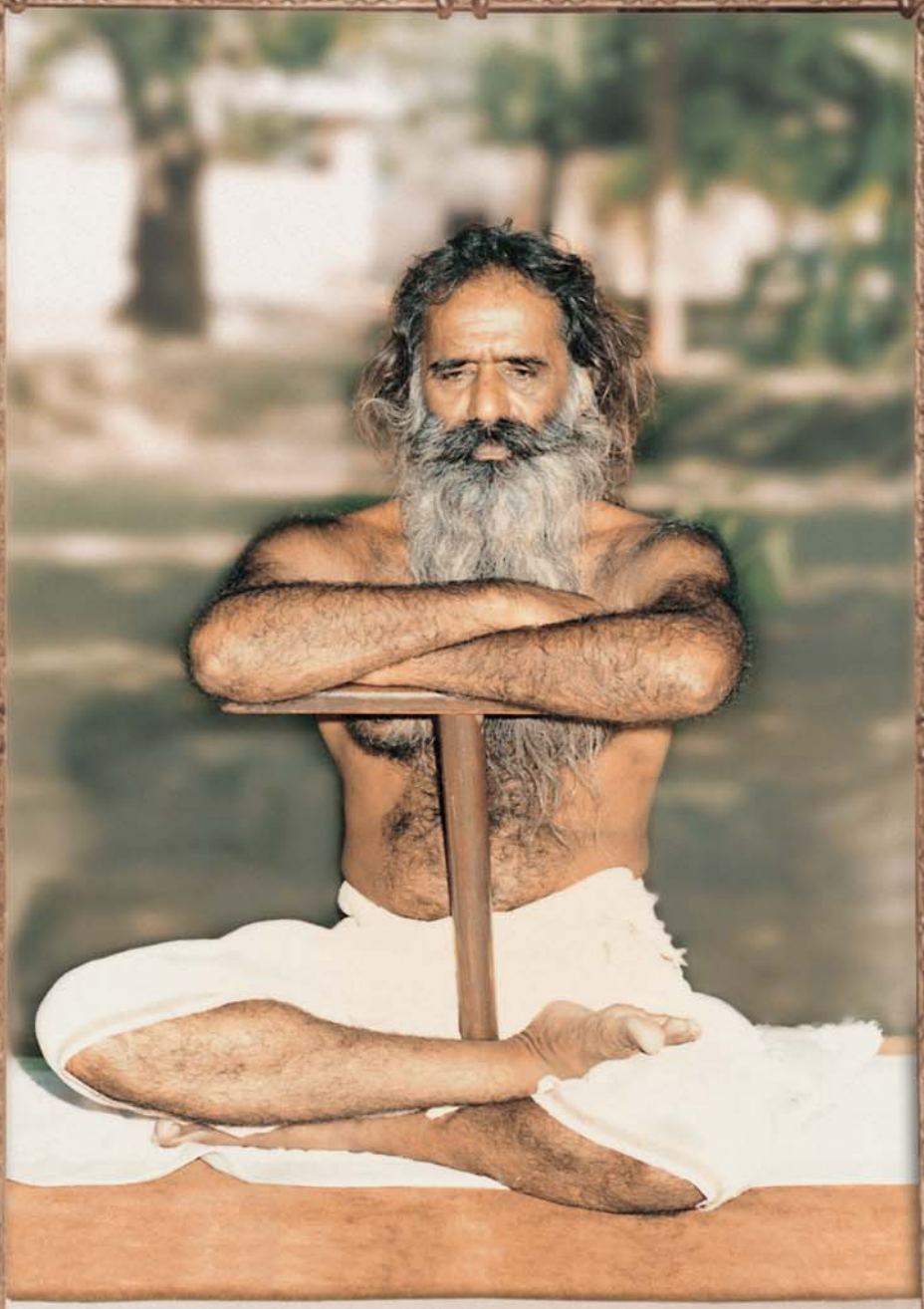

श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

निवेदन

बहुत बार समाज में बिगड़ाव आया, फिर किसी महापुरुष के माध्यम से सुधार आया। महापुरुष जब चले गए तब फिर बिगड़ाव आया, क्योंकि संसार गुण-दोषों से सना हुआ है। जब-जब कोई महापुरुष, सद्गुरु नहीं रह गया, तब-तब माया वाला पलड़ा भारी होने लगता है। मनुष्य उदासीन, अज्ञानी जन्मता है। जैसी संगत मिल गयी, वैसी राह पकड़ लेता है। कुसंग के मास्टर बहुत हैं, सतसंग वाले थोड़े कम हैं, महापुरुष कोई विरला होता है। यह कंजूसी परमात्मा के खाते में बहुत दिन से चली आ रही है। धर्मगुरु धर्म की ट्रेनिंग देकर पंचायत राज चला रहे हैं। महात्मा बुद्ध के बाद कोई बुद्ध नहीं हुआ। ईसा के बाद कोई ईसा नहीं हुआ। मुहम्मद साहब के बाद उस गद्दी पर कोई नहीं हुआ। तो ये सब विकृति बाद वालों की देन है। महापुरुष जब चले जाते हैं तो पीछे से विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं।

लोग रात-दिन रामायण को तोड़ने में लगे हैं, परमात्मा राम के आदेश का पालन करने में नहीं लगे हैं। महापुरुष तो कोई रह नहीं गया। जो ज्यादा बकवास करे, वही गुरु। मानस में लिखा है, कलयुग में–

जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

(मानस, 7/97/8)

धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥

(मानस, 7/छन्द 4)

जनेऊ पहन लिया तो पण्डित और उघार (निर्वस्त्र) रहा तो तपस्वी। जो बहुत वाचाल है वही गुणी। वास्तव में वो न गुणी है, न पण्डित है, न साधु है। यह कलयुग का प्रपंच है, और कुछ नहीं। इस प्रपंच की ही उपज है कि दुनिया दुःखी हो जाया करती है।

महापुरुष किसी का अनिष्ट कर ही नहीं सकते। उनसे जब होगा तब भला ही होगा, कल्याण ही होगा– **'एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥'** (मानस, 5/5/4) और समाज में ये जो दरारें पड़ जाती हैं–

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥ (मानस, 7/97क)

दम्भियों ने, धूर्तों ने बुद्धि से बहुत कल्पना करके बहुत से मत-मतान्तर खड़े कर दिए तो समाज में दरारें पड़ गयी। महापुरुष कभी दरार नहीं डाल नहीं सकते। जब भी उनका निर्णय होगा, वह साधक के साधन-परायण ही होगा। इसी पर बल देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥ (गीता, 8/11)

'वेदविद्' अर्थात् अविदित तत्त्व को प्रत्यक्ष जाननेवाले लोग जिस परम पद को **'अक्षरम्'**– अक्षय कहते हैं, वीतराग महात्मा जिसमें प्रवेश के लिये यत्नशील रहते हैं, जिस परमपद को चाहनेवाले ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं (ब्रह्मचर्य का अर्थ जननेन्द्रिय मात्र का निरोध नहीं, बल्कि **'ब्रह्म आचरति स ब्रह्मचारी'**– बाह्य स्पर्शों को मन से त्यागकर ब्रह्म का निरन्तर चिन्तन-स्मरण ही ब्रह्मचर्य है, जो ब्रह्म का दर्शन करा उसी में स्थान दिला शान्त हो जाता है। इस आचरण से इन्द्रिय-संयम ही नहीं, बल्कि सकलेन्द्रिय-संयम स्वतः हो जाता है। इस प्रकार जो ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं), जो हृदय में संग्रह करने योग्य है, धारण करने योग्य है उस पद को मैं तेरे लिये कहूँगा। वह पद है क्या, कैसे पाया जाता है? इस पर योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥ (गीता, 8/12)

सब इन्द्रियों के दरवाजों को रोककर अर्थात् वासनाओं से अलग रहकर, मन को हृदय में स्थित करके (ध्यान हृदय में ही धरा जाता है, बाहर नहीं। पूजा बाहर

नहीं होती), प्राण अर्थात् अन्तःकरण के व्यापार को मस्तिष्क में निरोधकर योग-धारणा में स्थित होकर (योग को धारण किये रहना है, दूसरा तरीका नहीं है)–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ (गीता, 8/13)

जो पुरुष **'ओम् इति'**– ओम् इतना ही, जो अक्षय ब्रह्म का परिचायक है, इसका जप तथा मेरा स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

इसके सम्पूर्ण समाधान के लिए आदिशास्त्र गीता की यथावत् व्याख्या **'यथार्थ गीता'** देखें। इसमें सींक रखने की जगह नहीं है। सबको अध्ययन करना चाहिए, सबको प्रतिदिन दो-एक श्लोक पढ़ना चाहिए।

– प्रकाशक

अनुक्रमणिका

क्रम	*विषय*	*पृष्ठ संख्या*
1.	आई गवनवाँ की सारी	1-9
2.	अबलौं नसानी अब न नसैहौं	10-18
3.	उजियारा है, उजियारा है	19-36
4.	अब तो अजपा जप मन मेरे	37-47
5.	अवधू वो ततु रावल राता	48-60
6.	अवधू अचरज भौ इक भारी	61-80
7.	असरा के घिउआ सनेहियाँ के बाती	81-101
8.	अलख के अमल पर चढ़े योगियों को	102-122
9.	अवधू भजन भेद है न्यारा	123-144
10.	अजब शहर में रंग महल में	145-156
11.	देखि-देखि जिय अचरज होई	157-172

॥ ॐ ॥

आई गवनवाँ की सारी

सद्गुरु, महापुरुष के यहाँ झाड़ू लगाते, सेवा करते आहिस्ते-आहिस्ते जहाँ श्रद्धा से गुरु महाराज से सम्बन्ध जुड़ा तब तुरन्त आपके हृदय में जो आत्मा प्रसुप्त है वह जागृत हो जायेगी, भगवान बातें करने लगेंगे, भगवान उठायेंगे-बैठायेंगे। इनके निर्देशन में चलने का नाम है भजन की जागृति। उन्हीं प्रभु के निर्देशन में चलकर साधक आगे साधन में प्रवृत्त होता है। क्रमशः श्रेणियाँ बदलती जाती हैं, स्तर उठता जाता है, और एक दिन लक्ष्य को विदित कर उसी में स्थिति पा लेता है। भजन एक जागृति है।

गुरु महाराज कहें– भगवान बोलते हैं, मैं बोलता हूँ, दोनों का मतलब एक ही है। भीतर से भी मैं ही बोलता हूँ और बाहर से भी मैं ही बोलता हूँ। यदि गुरु महाराज जागृति न दें तो भीतर भगवान तो सबमें सोया ही है। सोया सबमें है, जागृत तो सद्गुरु ने किया। सद्गुरु की कृपा से भजन जागृत हो गया, चित्तवृत्ति में भगवत्-पथपर्यन्त दूरी तय कराने वाला सत्य प्रवाहित हो गया। सत्य ही 'सारी' है, यह परमात्मापर्यन्त दूरी तय करा देगी। वहाँ तक आपका गमन हो गया, रास्ता विधिवत् निर्विघ्न आगे बढ़ता गया।

जब भगवान रथी हो जायें तो साधक का काम है– केवल भगवान चाहते क्या हैं?–समझो, कहते क्या हैं?–सुनो, और उसी के अनुसार आचरण करते जाओ, ढल जाओ। बच्चे की कोई कामना नहीं होती, जैसे लुढ़का दो, वैसे ही चलता है। इसका नाम है बाल्यावस्था। साधक जब भगवान के भरोसे चलने लगता है तो स्वभावतः पाँच साल का बच्चा और वह एक। अपनी बुद्धि की डेढ़ चावल की खिचड़ी न बनावे, केवल समझो, चलते जाओ। बुद्धि को अर्पण कर दो, मन को भेंट कर दो। अब हमारे पास मन है ही नहीं। फिर भगवान जितना चलाते हैं उतना ही चलता है। इसी आशय का भजन है–

आई गवनवाँ की सारी, उमर अबहीं मोरी बारी।

साज समाज पिया लै आये, लै आये कहरवा चारी।
बभना बेदरदी अँचरा पकरि के, जोरत गाँठ हमारी।
सखी सब पारत गारी।।

बिधिगति बाम कछु समझि परत ना, बैरिन भई महतारी।
रोय-रोय मोरी अखियाँ पोंछत, घरवा से देत निकारी।
भई हम सबको भारी।।

गौना कराय पिया लै आये, इत उत बाट निहारी।
छूटत गाँव नगर से नाता, छूटै महल अटारी।
कर्म गति टरे नहीं टारी।।

नदिया किनारे बलम मोरे रसिया, दीन्हे घूँघट पट टारी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नैहर कोउ न हमारी।
भई हम सबसे न्यारी।।

– – – – – –

आई गवनवाँ की सारी, उमर अबहीं मोरी बारी।

गौना के समय शृंगार-पटार होता है न, हमको भी भगवान के धाम पहुँचने वाली 'सारी' (साड़ी) मिल गयी। सत्यरूपी सारी। पहले चित्तवृत्ति माया से कलुषित थी। जब इसमें भजन जागृत हो गया, चितवृत्ति में सत्य प्रवाहित हो गया जो परमात्मापर्यन्त दूरी तय कराती है, लक्ष्य का दर्शन कराकर स्थिति दिलाती है। अब हम कुछ नहीं। भगवान जब चाहें उठावें, जहाँ चाहे बैठावें, चाहे जिधर ले चलें। भगवान शेर की गुफा में बैठायेंगे तो आपको बैठना पड़ेगा। आज्ञापालन ही भजन है। **'उमर अबहीं मोरी बारी।'**– अब बालवत् स्वभाव आ गया।

वहाँ पहुँचने का सामान है– यम, नियम, संयम, साधना, शौच, सन्तोष, स्वाध्याय। ये भगवान की ओर बढ़ने के लिए सामान हैं। यह कहाँ से मिला? यह भगवान खुद देते हैं।

साज समाज पिया लै आये, लै आये कहरवा चारी।
बभना बेदरदी अँचरा पकरि के, जोरत गाँठ हमारी।
सखी सब पारत गारी।।

'साज समाज'– विवेक, वैराग्य, शम, दम, धारणा, ध्यान, त्याग, तितिक्षा – जो साज-समान चाहिए वह भगवान ने खुद प्रदान कर दिया... इधर बैठ, उधर चल, ये गलत, यह सही। जिनको प्राप्त कर लेने पर जीव की प्यास सदा के लिए मिट जाती है, कुछ भी पाने की इच्छा नहीं रहती इसलिए भगवान का एक नाम 'पिया'। प्रीति का सर्वोपरि माध्यम इसलिए 'प्रियतम'। 'साँई' माने मालिक। पत रखने वाले, मर्यादा में सदा स्थिर रखने वाले तो 'पति'। मीरा ने कहा– **'मेरी पत राखो गिरधारी।'**-मेरी पत को रख लें।

एक दिन मीरा के पति भोजराज राणा युद्ध में वीरगति प्राप्त कर गये तो मीरा की सास पहले बहुत रोई, फिर ताव में आ गयी– चलो, लड़का गया तो गया, इस मीरा से तो जीव छूटा। मजीरे की थाप सुन ले तो कहीं भी चली जाती है, वहाँ खड़ी होकर मजीरा बजाने लगती है, नाचने लगती है। हम महारानियों की इज्जत धूल में मिला दिया। अरे, महारानियों को अपनी मेल-जोल में उठना-बैठना चाहिए।

महारानी बोली– इस मीरा से पिण्ड छूटा, इसको सती बना दो। सब रानियाँ गयीं, बोली– मीराजी, शृंगार करिए। मीरा बोलीं– किस बात का? तो बोलीं– सती हो जाओ। मीरा बोलीं– क्यों? तो बोलीं– आपके पति भोजराज राणा मर गये। मीरा बोलीं– पागल हो गयी हो! मैंने भोजराज को कब वरण किया था!

'म्हारो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।',

'ऐसे पति को क्यों बरूँ, जो जन्मे मरि जाय।
मीरा अबिनाशी बरयो, सुहाग अमर होई जाय।।'

ऐसे पति को मैंने कब वरण किया था जो जन्मे और मर जाय, जो सुहाग की रस्म भी आयुपर्यन्त निर्वाह न कर सके। मीरा ने अविनाशी का वरण किया

है, हमारा सुहाग अक्षुण्ण है, अजर-अमर है। रानियाँ बोलीं– अरे! लोकरीति भी कुछ होती है! मीरा बोली– लोकरीति, समाज की रीति, रिश्ते की रीति..

सगले रिस्ते जगत के सजनी होय होय मिट जासी।
मीरा अविनासी बरयो, सुहाग अमर हो जासी।।

ये रिश्ते तो होते हैं, मिट जाते हैं, फिर होते हैं, फिर मिट जाते हैं। मीरा ने अविनाशी का वरण किया है जिसका काल भी विनाश नहीं कर सकता। हमारा सुहाग अक्षुण्ण है। बस, सब मुँह लटकाकर चली आयीं, मीरा मीरा हो गयीं।

भगवान पत रखने वाले हैं इसलिए उनका एक नाम पति है। कबीर ने इन शब्दों का ज्यादा प्रयोग किया। कबीर की वाणी में यह शब्द पाये जाते हैं। तुलसीदासजी ने भी इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया और हर महापुरुष ने प्रयोग किया है, आप लोगों की निगाह न पड़ी हो, ये बात अलग। तो– **'साज समाज'**– जिन्हें प्राप्त कर लेने पर जीव की सारी प्यास मिट जाती है। प्यास माने तृष्णा कि स्वर्ग चाहिए, और चाहिए, वो चाहिए। जब भगवान के आगे कुछ है ही नहीं तो तृष्णा किस बात की!, माँग किस बात की! सम्पूर्ण तृष्णायें शान्त हो जाती हैं, कुछ भी पाने लायक नहीं रहता इसलिए पिया।

'साज समाज पिया लै आये, लै आये कहरवा चारी।'

भजन के चार क्रमोन्नत स्तर हैं– नाम, रूप, लीला और धाम।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।

(मानस, 1/20/6)

बगैर 'रूप' को देखे ही..... रूप तो हमने देखा ही नहीं, 'नाम' सबके लिए सुलभ है, तो बगैर 'रूप' देखे ही नाम का सुमिरन करो। विशेष स्नेह से जब लौ लग जायेगी तो 'रूप' हृदय में आ जायेगा। रूप आ जाये तब ध्यान धर लेना। जहाँ ध्यान धरने में आया तो भगवान जागृत हो जायेंगे। रूप आ गया, जहाँ स्तर थोड़ा ऊपर उठा तो 'लीला'– भगवान अपनी विभूतियों से अवगत कराने लगेंगे। उन्हीं के निर्देशन में चलते हुए जहाँ मूल का स्पर्श किया तो 'धाम'। धाम माने स्थिति। साधक स्वरूपस्थ हो गया, भगवतस्वरूप

की स्थिति मिल गयी। तो क्रमोन्नत चार कहार हैं– नाम, नाम से रूप, रूप से लीला और लीला से धाम– **'आये कहरवा चारी।'**

यह साज-समान पिया तो ले आये, लेकिन यह व्यवस्था मिली कैसे? ब्राह्मण से।

बभना बेदरदी अँचरा पकरि के, जोरत गाँठ हमारी।

'बभना'– ब्रह्म को जानने से ही ब्राह्मण है, वही सद्गुरु होते हैं, वह बड़े निष्ठुर होते हैं। एक बार साधना की लाइन पर आ गये, फिर कितना भी छटपटाओ, रक्षा करके ही दम लेते हैं। वह बड़े बेदर्दी होते हैं। साधक को साधना की कसौटी पर ले चलते हैं, इसलिए बेदर्दी। वह सद्गुरु हैं। उनको तुम्हारा क्या बिगड़ा, क्या बन रहा है?–इससे कोई मतलब नहीं। उनकी दृष्टि केवल साधक लक्ष्य पर डटा रहे, इस पर रहती है।

बभना बेदरदी अँचरा पकरि के जोरत गाँठ हमारी।

अचल है, स्थिर है, शाश्वत है, सनातन है वह परमात्मा, उनको पकड़कर उनसे आपकी गाँठ जोड़ दिया। अब भगवान उठायें, बैठायें, ले चलें।

सखी सब पारत गारी।

उस वक्त इन्द्रियाँ भली प्रकार संयत हो जाती हैं, साख्य भाव में आ जाती हैं। **'के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि तान्येव मित्राणि जितानि कानि।'** (प्रश्नोत्तरी, 4)– दुनिया में शत्रु कौन हैं? अपनी इन्द्रियाँ। जीत ली जायं तो मित्र बनकर मित्रता में बरतती है, परम कल्याण करने वाली होती हैं, सब साख्य भाव में आ गयीं। पहले हम भजन में लगाते थे, यह उधर भागती थीं। अब एकदम साथ निर्वाह करने वाली हो गयीं, साख्य भाव में आ गयीं। **'सखी सब पारत गारी'**– ईश्वर के अनुरूप गायन करने लगीं।

भजन जागृत हो गया, पर्याप्त नहीं। विधाता के लेख ने युधिष्ठिर को वन में भेज दिया, विधाता के लेख ने नारदजी की परीक्षा ले लिया, विधाता के लेख से रामजी को भी वन जाना पड़ा। संस्कार में जो हो,

बिधिगति बाम कछु समझि परत ना, बैरिन भई महतारी।

विधिगति बाम है, कुछ समझ में नहीं आता, अगले कदम पर क्या होने वाला है, गड्ढे में जायेंगे कि राह पर पाँव पड़ेगा– **'बिधिगति बाम कछु समझि परत ना'**। लेकिन भक्तिरूपी माता। एक शरीर का जन्म माताओं से है, लेकिन आपके स्वस्वरूप के जन्म में भक्ति ही माता है, ज्ञान ही पिता है।

बिधिगति बाम कछु समझि परत ना, बैरिन भई महतारी।
रोय-रोय मोरी अखियाँ पोंछत, घरवा से देत निकारी।
भई हम सबको भारी।।

गवनवाँ की सारी आयी तो जवान होना चाहिए था, लेकिन अब हमारी उम्र बारी। वास्तव में भक्ति ही माता है। **'ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा।।'**– भक्ति का पथ कृपान की धार पर चलना है। साधक जब भक्तिपथ में आ गया तो कितना भी संकट हो, लाख विघ्न हो, भगवान पीछे मुड़कर नहीं देखने देते।

'बैरिन भई महतारी'—भक्ति ही माता है। यह ऐसी माई नहीं कि 'बच्ची-बच्ची' कहकर पुकारे, यह बड़ी निर्दयता से साधना में प्रवृत करती है। भग+इति=भक्ति – जो प्रकृति का अन्त कर दे, उसका नाम भक्ति है। यह बैरिन है। प्रह्लाद को शूली पर चढ़ा दिया, हाथियों से कुचलवाया, आग में झोंक दिया; मीरा को जहर दिया, शूली पर लिटाया, देश-निकाला दिया लेकिन भक्ति टस से मस नहीं हुई। भक्ति जागृत हो जाती है तो लाख विघ्न आने पर भी पीछे मुड़कर नहीं देखने देती–**'बैरिन भई महतारी'**।

रोय-रोय मोरी अखियाँ पोंछत, घरवा से देत निकारी।

जब बुरे संस्कार आते हैं तो साधक रोता है। जब थोड़ा रुदन किया तो भगवान थोड़ा पीठ ठोंक देते हैं– धीरज धर, आगे सब सही है, आगे सब ठीक होने वाला है। इसी तरह भक्ति शनैः-शनैः प्रकृति के बन्धन से निकाल देती है– **'घरवा से देत निकारी।'**

भई हम सबको भारी।।

लोग कहते हैं– यार, अच्छे थे, स्क्रू लूज हो गया, बर्बाद हो गये। और क्या कहेंगे! तो, **'भई हम सबको भारी।'**

गौना कराय पिया लै आये, इत उत बाट निहारी।

हम अपने बल से तो भगवान तक की दूरी नहीं तय कर सकते। वह प्रभु स्वयं ले चलें, सारी विधियों से– यम, नियम, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह – इन साधना-पद्धतियों से **'गौना कराय पिया लै आये'**–स्वयं ले चले। **'इत उत बाट निहारी।'**– इत माने अविद्या, प्रकृति वाला रास्ता; उत माने विद्या, परमात्मा वाला रास्ता– दोनों रास्तों पर निगाह रखते हुए, पाँव न फिसलने पावे। दैवी सम्पद् परमदेव परमात्मा से मिलाती है; आसुरी सम्पद् अधोगति, नीच योनियों में फेंकती है। बस दो ही तो मार्ग हैं– निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग। संसार में सदा प्रवृत्त रहो, चलते रहो, चाल कभी नहीं रुकेगी, पहुँचोगे कहीं नहीं–इसका नाम भवाटवी है, भटकने वाला रास्ता। दूसरा रास्ता, जिस राह पर चलकर साधक परम तत्त्व परमात्मापर्यन्त दूरी तय कर लेता है, दर्शन, स्पर्श और सदा रहने वाला स्वरूप पा जाता है, धाम पा जाता है।

छूटत गाँव नगर से नाता, छूटै महल अटारी।
कर्म गति टरे नहीं टारी॥

गाँव से सम्बन्ध छूटा, नगर से छूटा, **'छूटै महल अटारी'**–महल छूटा, अटारी छूटी– यह कर्मों का प्रभाव है।

भगवान की ओर गमन करने वाली चितवृत्ति में सत्य प्रवाहमान हो गया तो सत्यरूपी सारी। और जब यह सत्य प्रवाहमान हो जाये तो बालवत् स्वभाव आ जाता है– **'उमर अबहीं मोरी बारी'**।

भगवान पहुँचाये कहाँ? नदी किनारे। **'राम कथा भव सरिता तरनी।'**– नदी के उस पार पहुँचा दिया।

नदिया किनारे बलम मोरे रसिया, दीन्हे घूँघट पट टारी।

वह प्रेमास्पद प्रभु सम्पूर्ण रसों से सम्पन्न है, इसलिए रसिया। वीररस, सोमरस, भक्तिरस, मुक्तिरस.... सब। **'नदिया किनारे'**– जब उस पार पहुँचे तो भगवान जो सम्पूर्ण रस के प्रदाता, रस से सम्पन्न हैं, **'दीन्हे घूँघट पट टारी'**– एक तो घूँघट लोग पर्दा करते हैं; एक घूँघट है माया का पर्दा, मल-

आवरण, विक्षेप का पर्दा, अनन्त चितवृत्ति में विकारों का पर्दा। एक संस्कार बाकी है तो एक जन्म और लेना पड़ेगा– यह है पर्दा। अन्तिम संस्कार का मिट जाना = पर्दा खत्म हो जाना। चित्त का अचल स्थिर ठहर जाना और इस निरोध के साथ ही जगत से पिण्ड छूट गया, किनारे आ गये। चित्त का पट पसार ही तो जगत था। इस घट में.... घट माने हृदय में जो पट पड़ा हुआ था, वह पर्दा हट गया– **'दीन्हे घूँघट पट टारी'**– अन्तिम संस्कार भी मिट गया।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, नैहर कोउ न हमारी।
भई हम सबसे न्यारी।।

कबीरदासजी कहते हैं– सुनो, और सुनो भर ही नहीं, उसे साधो, साधने में लगो।

'नैहर कोउ न हमारी.....'

नेह निभाया ही सरे, छोड़े सरे न आन।
तन दे धन दे शीश दे, नेह न दीजै जान।।

एक तो पीहर माने सास-ससुर-पति का घर, और नैहर माने माता-पिता-बन्धुओं का घर। यह तो एक उदाहरण है। नेह माने स्नेह। नेह का निर्वाह करने पर ही तुम्हारा कल्याण सम्भव है, छोड़ने से कदापि नहीं, अन्य किसी विधि से कदापि नहीं।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।

भगवान सर्वत्र समान व्याप्त हैं, आपको तभी मिलेंगे जब प्रेम से सम्बन्ध जुड़ जाए।

अग जग मय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।

भगवान चराचर जगत में हैं, सबसे रहित, विरक्त हैं। प्रेम से ऐसे प्रकट हो जाते हैं जैसे चकमक पत्थर में रगड़ करो तो आग तैयार; लकड़ी घिस दो, आग तैयार। **'प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।'** भगवान को खोज निकालने की विधि प्रेम। प्रेम माने स्नेह। इस स्नेह, नेह का अपहरण करने वाला प्रकृति में, माया में किंचित् भी कोई विकार नहीं बचा। प्राप्ति के साथ माया तो मिट

गयी। **'नैहर कोउ न हमारी'–** अब हमारे रास्ते में कोई अवरोध नहीं, कोई बाधा नहीं जो हमारे प्रेम में, चिन्तन में विघ्न डाल दे। **'भई हम सबसे न्यारी'–** अब हम सबसे अलग हो गये, मुक्त हो गये, सर्वज्ञ पद प्राप्त कर लिया। वह पद है कैसा?–

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ (गीता, 15/6)

उस परम पद को न सूर्य, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर पाते हैं। जिस परम पद को प्राप्त कर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते हैं, वही मेरा परम धाम है अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इस पद की प्राप्ति में सबका समान अधिकार है। जो धाम पा गया, वह सबसे अलग हो गया– **'भई हम सबसे न्यारी।' 'आई गवनवाँ की सारी',** जब आई तब **'उमर अबहीं मोरी बारी।'**

यह कड़वा है, कठिन है, लेकिन है आप ही के हृदय की वस्तु। यह साधन-पद्धति है। महात्मा किसी भाषा में बोले, मूर्खचपाट क्यों न हों, यदि महात्मा हैं तो उनको भगवान पढ़ाते हैं, उनकी वाणी ही वेद है, वही एक सत्य उद्घाटित करेंगे। हमारे गुरु महाराज केवल तीन दिन स्कूल गये थे। अरे, छोटा लड़का... मास्टर साहब ने चंचलता देखकर, चुलबुलाहट देखकर थोड़ा ठोंक दिया। अब भोंकार छोड़कर, मचलकर पाँव पीटकर लगा रोने, बन्द ही न करे। महतरिया आई, गोद में उठा लिया, बोली– यह दहिजरो का नाती मास्टरवा, सब कलम से पढ़ावत है, इ डण्डा से पढ़ावत है। पचास तो खरी-खोटी मास्टर साहब को सुनाया और लेकर चली गयीं। मातृमोह में पढ़ाई जन्म से छूट गयी, फिर आगे कबहूँ नहीं पढ़े। उन्हीं की विद्या है जो शिष्य-परम्परा में अब भी यथावत् चल रही है, और यह विद्या कहीं-कहीं है, है जरूर।इसलिए भगवान के धाम में पहुँचाने वाली सत्यरूपी साड़ी के लिए सबको चाहिए कि परमात्मा के दो-ढाई अक्षर के नाम- ॐ, राम या शिव में से एक नाम का उठते-बैठते-चलते-फिरते जीवन के हर मोड़ में नाम याद आये।

॥ ॐ श्री गुरुदेव भगवान की जय ॥

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं

वेद, श्रुति, पुराण, उपनिषद, गीता, श्रीरामचरितमानस और जितने भी वरिष्ठ महापुरुष हुए हैं, गुरु नानक, बुद्ध, महावीर इत्यादि सबका निर्णय एक कि एक आत्मा ही सत्य है, एक परमात्मा की शरण, श्वांस से जाप और उसकी प्राप्ति। ईश्वर एक है।

हृदय की दैवी सम्पद् का नाम देवता है। दैवी सम्पद् हृदय में बलवती होती चली गई तो परमदेव परमात्मा तक की दूरी तय करा देती है। यह परमदेव परमात्मा को देखनेवाली दृष्टि प्रदान करती है, दर्शन, स्पर्श, प्रवेश और स्थिति दिलाती है, और सदा रहनेवाला जीवन और शान्ति प्रदान करती है। इसी हृदय में जब आसुरी सम्पद् का बाहुल्य होता है तो प्रकृति के अनन्त अंधकार में भटकाती है। **'पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।'** (भजगोविन्दम्, 21)— बार-बार जन्म-मृत्यु के भयंकर अथाह समुद्र में धकेल देती है। अ माने नहीं, सुर माने देव – जिसमें दैवी सम्पद् अर्जित न होती हो; उसके विपरीत प्रकृति के अंधकार में भरमाता हो, ढकेल देता हो, उसका नाम आसुरी सम्पद् है। यह आसुरी सम्पद् अधोगति, नीच योनियों में भटकाने के लिए ही होती है। यह बरबस पीछा करती है। जानते हुए भी हमें भटकना ही पड़ रहा है।

तुलसीदास ऐसे ही भटक गए थे। बाल्यकाल में उनकी माँ मर गयी, पिताजी मर गये। पालने वाली एक चुनिया मौसी मर गईं। अब भीख माँगने पर भी कोई नहीं दे कि तक्षक है। जो हाथ इसे खाना देगा, उसी को खा लेगा, यह तक्षक है।

अब तुलसी की दशा देखो, मन्दिर में गये तो मन्दिर के पुजारियों ने भी भगा दिया। लेकिन जिसको दुनिया में कहीं ठिकाना न हो, संसार भर का

बहेतू हो, महात्माओं के यहाँ उसका ठिकाना है। स्वामी नरहरियानन्द जी उधर आ गये, तुलसी को देखा, बोले– यह बच्चा कैसा है? लोग बोले– लावारिस है, अभागा है। इसके आगे-पीछे कोई नहीं। गाँव भर इसकी मृत्यु मना रहा है, अपशकुनी है, राहु-केतु-शनिश्चर सब इसमें भरा है। महात्मा बोले– अच्छा-अच्छा। तुलसी के सिर पर हाथ फेरा, बोले– बच्चा, तुम हमारे साथ चलो। वे तुलसी को अपने आश्रम में ले आये।

आदमी न भला होता है, न बुरा होता है; आदमी, आदमी होता है। कैसा भी कुसंस्कार हो– **'मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥'** (मानस, 1/31/9)– कर्म में असाध्य कुअंक और घोर नरक और यातनायें लिखी हों, मिट जायेंगी, सुअंक अंकित हो जायेंगे। माना कि यह अभागा है, इसको जो देख लेगा वही मर जाता है, लेकिन मनुष्य है। यह संस्कार भी कटने लायक है। कैसा भी कुसंस्कार हो, नाम के प्रभाव से कट जाता है। नरहरियानन्द बोले– बेटा बोलो 'राम'। तुलसी राम-राम कहने लगा।

लगे पढ़ाने। खुद कोई मास्टर तो थे नहीं, संत थे, कुछ दूरी पढ़ाकर बोले– नाम बंद मत करना। और यह काशी वाले गुरुजी हैं, इनसे पढ़ो। काशी वाले गुरुजी के पास जितने भी विद्यार्थी थे, सबसे सर्वोपरि तुलसी निकले। फिर नरहरियानन्द महाराज के पास आए तो गुरुदेव बोले– तुम्हें रामकथा का प्रसारण करना है। तुलसीदास बोले– गुरुदेव! अवश्य करूँगा। कविता भी फूट पड़ी। इतने में पण्डित लोगों की निगाह पड़ गई, बोले– विद्वान है, मेधावी है, काव्य रचता है। और ब्राह्मण को क्या चाहिए! ब्राह्मणोचित सारे गुण हैं।

आजकल दरवाजे पर ट्रैक्टर है कि नहीं, गाड़ी है कि नहीं, नौकरी कायदे से है कि नहीं, नौकरी है तो ऊपरी कमाई है कि नहीं, तब लड़की का विवाह करते हैं। लेकिन उस जमाने में पढ़ा है, विद्वान है, मेधावी है, काव्य-रचना जैसी क्षमता दिखाई दे रही है, यह पैमाना था। बस ब्राह्मण पीछे पड़ गए, विवाह करवा दिया।

तुलसीदास का विवाह हो गया। भले घर की कन्या थी, मन-क्रम-वचन से सेवा में लग गई। अब तुलसीदास रामजी की पूजा तो भूल गये, श्रीमती जी की ही पूजा करने लगा। ससुराल से बुलावा आए, लेकिन तुलसीदास न भेजे। तुलसीदास की अनुपस्थिति में एक दिन उसका भाई आया, रत्ना को संग लिवा ले गया और एक चिट्ठी लिखकर रख दिया।

तुलसीदास घर आये तो देखा कि कहाँ गयी। पत्र पढ़कर तत्काल ससुराल को चल दिये। जमुना में बाढ़ आई थी। तुलसी केवट से बोले– पार करो। केवट बोला– इस बाढ़ में नाव डूब जाएगी। इस बाढ़ में कोई नाव नहीं चलती। सब घाट बंद है।

अब तुलसी यमुना में कूद गये, लगे डूबने-मरने। इतने में एक लाश दिखाई पड़ गई, उसको पकड़ लिया, पार हो गया। ससुराल पहुँचने में रात के बारह बज गये। अब घर की परिक्रमा किया, छत से एक सर्प लटक रहा था, पकड़कर चढ़ गया। उस देवी ने कहा– ''आप! दरवाजा किसने खोला?'' तुलसी बोले– ''प्रिये, तुमने रस्सी लटका रखी थी न।'' जाकर दीये से देखा तो रस्सी की जगह सात हाथ लम्बा भयंकर काला सर्प। रत्ना ने कहा– ''अरे, मौत के मुँह से बच गये, रस्सी और सर्प का अन्तर भी समझ में नहीं आया।'' फिर पूछा– ''जमुना कैसे पार किया?'' तुलसी बोले– ''मैं कूद गया तो तुम्हारे प्रेम ने एक नाव भेज दिया, पर दुर्गन्ध बहुत आ रही थी।'' रत्ना बोली– ''अच्छा, लाश पकड़कर चले आये।''

रत्ना डपटकर बोली– ''इस हाड़-माँस के बने हुए पिंजरे में जितना प्रेम है, इसका आधा भी भगवान में होता तो बेड़ा पार हो जाता।'' वह मानि-सम्मानी थी। उसने सोचा कि गाँव भर क्या कहेगा! इतने गलत-गलत लोग यहाँ पर हैं, यह दामाद गया-गुजरा है। अपने सम्मान के लिए उसके मुँह से बोल फूट पड़े।

एक बार तो तुलसी ने सुना ही नहीं, दुबारा थोड़ा समझा, तीसरी बार कहा तो तुलसी बोले– ''चुप-चुप... किसी से बताना मत कि तुलसी आया था।'' कूदकर भागे और हो गये साधु।

बहुत दिनों बाद जब तुलसीदास रत्ना से मिले तब हाथ जोड़कर बोले– ''रत्ना! तुम्ही हमारी गुरु हो। तुम्हारी वजह से हमें रामजी का रास्ता पुनः मिल गया। गुरु महाराज को जो वचन दिया था, वह वचन पूरा करने का समय आ गया।'' रत्ना बोली– ''ठीक है, आप रामायण अवश्य लिखना। लेकिन भगवान से प्रार्थना के लिए 'विनयपत्रिका' लिखना।'' उस देवी ने सहयोग ही किया।

तुलसीदास जी ने प्रार्थना किया– लिखेंगे कहाँ से!... जब भगवान क्षमा करेंगे तब तो! उसी क्षमा-याचना की 'विनयपत्रिका' का यह भजन है–

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं॥1॥
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं॥2॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥3॥

– – – – – (विनयपत्रिका, 105)

अबलौं नसानी रघुवर, अब न नसैहौं।
अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।

अब तक जो आयु व्यर्थ चली गयी, वह तो चली ही गयी, अब भविष्य में एक भी पल नष्ट नहीं होने दूँगा, आपके चिन्तन से विमुख श्वास नहीं लूँगा।

श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं॥3॥
जानकी-जीवनकी बलि जैहौं। (विनयपत्रिका, 104)

परम प्रभु प्राणों का जीवन आधार हैं। उनके ऊपर मैं अपने आपको बलि चढ़ा दूँगा, न्यौछावर कर दूँगा।

प्रभु क्षमा करें, '**अबलौं नसानी रघुवर**'– हे भगवन्! अब तक जो आयु नष्ट हुई वह तो हो ही गई। '**अब न नसैहौं**'– अब जो बची हुई आयु है, वह नष्ट नहीं होने दूँगा। कानों से दूसरी बात नहीं सुनूँगा, आँखों से दूसरा दृश्य नहीं देखूँगा, मन से दूसरा चिन्तन नहीं होने दूँगा।

आखिर बिगड़ी सुधरेगी कैसे? तुलसीदासजी में नाम जागृत हो गया था, नाम जप रहे थे। रामबोला नाम तो शुरु से ही था।

पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।

नाम सुन्दर चिन्तामणि है, सतत चिन्तन करो।

राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥

(मानस, 7/119/2)

भक्ति-भक्ति कहने से तो भक्ति आएगी नहीं। दुनिया में जो किया जाता है, वह है चिन्ता; और भगवान के लिए जो सतत अभ्यास किया जाता है उसका नाम है चिन्तन। भक्ति एक चिन्तामणि है। तुलसीदासजी कहते हैं– '**पायेउँ नाम**'– हमने नाम प्राप्त किया, वह बहुत सुन्दर विलक्षण चिन्तामणि है। नाम तो सतत चिन्तन की वस्तु है।

श्वास श्वास पर राम कहु, वृथा श्वास जनि खोय।
ना जाने इस श्वास का, आवन होय न होय॥

न जाने कल यह श्वास लौटकर आएगी या नहीं, कौन भरोसा!..... बाजार गए थे, लौटे ही नहीं।.... नाम हर समय चिन्तन से चिन्तामणि है, एक मणि है, एक रतन है– '**पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।**'– इस रतन को हृदयरूपी हाथ से खिसकने, रपटने नहीं दूँगा, रोके रहूँगा।

मन को कहाँ लगाओगे? तो,

स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं॥2॥

'**स्यामरूप**'– प्रभु का श्यामस्वरूप – यह बिल्कुल शुद्ध और रुचिकर

है, कसौटी है। उस कसौटी पर चित्तरूपी कंचन को मैं कसता चला जाऊँगा। उन प्रभु के श्यामरूप को सदा चित्त में धारण किये रहूँगा। **'स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी'**– विशुद्ध है, रुचिकर है, एक कसौटी है। इस कसौटी पर चित्त को सदैव कसकर परखता रहूँगा कि कितना लगना चाहिए और कितना लग पा रहा है।

'अबलौं नसानी रघुवर, अब न नसैहौं।'– हे भगवन्! अब तक तो नष्ट हो ही गई।

आखिर अब तक उम्र नष्ट क्यों नष्ट हो गयी? तो बोले– भगवन्! हमारा दोष नहीं है। हमें इन्द्रियाँ घसीटकर वहाँ ले गईं थीं। हम इन्द्रियों से पराधीन थे, मारे-मारे फिरे। **'जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो'** (विनयपत्रिका, ४४)– जिधर इन्द्रियों ने तान दिया, जिधर संकल्प ने खींच लिया, जिस वासना की ओर तरंग उठ गई उधर ही भागा-भागा गया। इन्द्रियों ने मुझको पराधीन कर रखा था, कैद कर रखा था।

परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।

इन्द्रियों ने पराधीन कर रखा था, घसीटकर ले गईं। कभी इधर पटका, कभी उधर पटका। **'परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन'–** जहाँ-तहाँ घसीटकर पटका, और दुःख पाया तो इन इन्द्रियों ने हँसी उड़ायी। अब हमने इन्द्रियों को संयमित कर लिया है, **'निज बस ह्वै न हँसेहौं'–** फिर जगत में हँसी नहीं उड़ाने दूँगा, इन्द्रियों को वासनाओं की ओर नहीं जाने दूँगा, यह संयम टूटने नहीं दूँगा।

और मन को कहाँ रखोगे?

मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥३॥

मधुकर माने भ्रमर। मन को भ्रमर बनाकर भगवान के चरण-कमलों में उसको बसेरा दे दूँगा। भ्रमर के लिए सभी फूलों की खुशबू मान्य हैं लेकिन यदि कमल का पराग पा जाए तो दूसरी जगह नहीं जाता। मन को भगवान के चरण-कमल में बसेरा दे दूँगा। इधर-उधर न भाग, यहाँ बैठा रह, यह

पराग का रस लेता जा। अब इस प्रकार भविष्य में कभी नष्ट नहीं होने दूँगा। आयु जो बीत गई बीत गई, भविष्य की आयु को नष्ट नहीं होने दूँगा।

अबलौं नसानी रघुवर, अब न नसैहौं।

हे परमात्मन्! हे प्रभु! हे रघुवर! अब तक नष्ट हो ही गयी। तुलसी हल्ला मचाकर कहते हैं– नष्ट हो ही गयी। अपनी भूल स्वीकार कर रहे हैं कि नष्ट हो गई। '**अबलौं नसानी रघुवर, अब न नसैहौं।**' लेकिन अब नष्ट नहीं होने दूँगा।

लोग बोले– क्यों नहीं होने दोगे? तुम हो तो वही! तुलसीदासजी बोले– हमको एक नई चीज़ मिल गई।

राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं।

प्रभु की कृपा से जगतरूपी रात्रि का अँधेरा छँट गया। मैं जगतरूपी रात्रि से जाग गया हूँ, आँखें खुल गई हैं, देख रहा हूँ। '**जागे फिरि न डसैहौं। अबलौं नसानी रघुवर, अब न नसैहौं।**'– अब जग गया हूँ, इस माया में अपना बिछौना नहीं बिछाऊँगा। इस प्रकार अब तक नष्ट हो गई, गई। '**गयी सो गयी, अब राख रही रे।**' (कबीर); '**अब न नसैहौं।**' इसलिए भजन एक प्रभु का।

गीता आपका धर्मशास्त्र है। सबके पास होना चाहिए। बच्चों के बस्ते में होना चाहिए। माताओं के चूल्हों के पास होना चाहिए। धर्मशास्त्र ही है तो एकाध श्लोक रोजाना पढ़ना चाहिए।

गीता पर सैकड़ों टीकायें लिखी गई हैं। किसी टीकाकार ने यह नहीं लिखा कि धर्म क्या, कर्म क्या, वर्ण क्या, भजन किसका, कैसे और क्यों करें। 'यथार्थ गीता' चार बार आद्योपान्त पढ़ लोगे तो न संदेह है और न भविष्य में होगा।

अर्जुन लड़ना नहीं चाहता था। धनुष फेंक दिया और रथ के पिछले भाग में दुबककर बैठ गया कि, गोविन्द! मैं युद्ध नहीं करूँगा? यह पाप है। भले ही यह शस्त्रधारी कौरव मुझे मार डाले, मरना श्रेयस्कर है किन्तु युद्ध

नहीं करूँगा। ऐसा युद्ध करने से सनातन धर्म नष्ट हो जाएगा। एक रुढ़ि उसने भी पाल रखी थी जिसे वह धर्म-धर्म कह रहा था। भगवान ने कहा– यह घोर अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया?

कहीं धर्म लिखने से क्या धर्म हो जाता है? किसी कुरीति के ऊपर धर्म का साइनबोर्ड लगा दो तो उससे दाल-रोटी चलेगी तो चार दिन लेकिन सबका विनाश करके दम लेगी। अब तक भारत में यह धर्म था कि गाय धर्म, बिच्छू धर्म, सर्प धर्म....। भगवान को छोड़कर सब धर्म, इसलिए आज उसकी क्या दुर्दशा हो गई है। तुलसी कहते हैं–

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।

(मानस, 7/126/2)

वह धर्म के परायण है, उसका वह सारा कुल कृतार्थ है, भाग्यशाली है जिसमें किसी एक का राम के चरणों में मन लग जाए। तुलसीदास जी एक राम की शरण को धर्म कहते हैं। गीता में भी है–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (गीता, 18/66)

एकमात्र मेरी शरण हो जा। एक भी महात्मा ऐसा नहीं हुआ जिसने इसके अलावा कोई अलग धर्म बताया हो। लेकिन आज के लोगों का धर्म? एक भगवान को छोड़कर सब कुछ किया जा रहा है और 'बोल सनातन धर्म की जय'! यह विकृति क्यों आयी? धर्म का निर्णय देने का अधिकार जब विषयी जीवों के हाथ में पड़ जाता है तब; क्योंकि वह बेचारा जो जानता है, वही तो कहेगा।

गीता जब राजर्षि काल से विलुप्त हो गई, उस विलुप्त अवधि में धर्म के नाम पर जो कुरीतियाँ फैल गई थी, उन कुरीतियों में दो-चार कुरीतियों का शिकार अर्जुन भी था और उसके लिए प्राण देने पर तुला हुआ था। भगवान ने कहा– घोर अज्ञान; तब अर्जुन बोला– भगवन्! यदि यह अज्ञान है तो मैं

इसके आगे कुछ नहीं जानना, आप ही बतायें। यही से गीता की शुरुआत हुई। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– एक परमात्मा ही सत्य है, परम तत्त्व है, और किञ्चित् भी किसी का अस्तित्त्व नहीं है। आज है तो कल विलुप्त हो जाएगा। एक परमात्मा की शरण हो। उसे प्राप्त करने की नियत विधि, योगविधि यज्ञ है। यज्ञ को कार्यान्वित करना, योगविधि को कार्यरूप देना कर्म है। कर्म माने आराधना, कर्म माने चिन्तन। इस नियत कर्म का आचरण ही धर्माचरण है।

गीता का प्रत्येक श्लोक मंत्र है। नास्तिक पढ़ लेगा तो आस्तिक हो जाएगा। भली प्रकार चार बार गीता पढ़ लोगे तो वैराग्य उदीप्त होने लगेगा और उसके अनुसार जब आचरण करने लगोगे तो आप पाओगे, आपके पीछे कोई अदृश्य शक्ति आपका मार्गदर्शन कर रही है। और जहाँ सत्पुरुषों का सान्निध्य मिला तो भगवान रथी हो जायेंगे, उठायेंगे-बैठायेंगे, चलायेंगे।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय॥

उजियारा है, उजियारा है

करोड़ तीर्थ घूम लो, करोड़ व्रत कर लो, जब पाओगे तब हृदय-देश में। भगवान का निवास हृदय में है।

ब्यापकु एक ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी।।
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।।

(मानस, 1/22/6)

वह व्यापक है, एक है। भगवान एक से दो कभी हुआ ही नहीं; और यहाँ तैंतीस करोड़ भगवान कम पड़ गये तो मजार पर पहुँच गये। डिग्रीधारी धर्माचार्यों ने भोले-भाले हिन्दुओं को गुमराह कर दिया, भटका दिया। किसी की बात मत मानो, केवल भगवान की बात मानो। भगवान की बात गीता है। गीता के होते हुए कोई भरमा ही नहीं सकता था लेकिन गीता पर कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये, डरा दिया कि लड़का साधु हो जायेगा। गीता घर में मत रखना नहीं तो वंश नष्ट हो जायेगा, वंश-परम्परा खत्म हो जायेगी, महाभारत जैसी विभीषिका हो जायेगी। पूरे भारत में गीता किसी के घर में नहीं थी। आप लोगों ने थोड़ी मेहनत किया तो अब मिलने लगी है। अब सब अपनी-अपनी टीका लेकर दौड़ने लगे हमारी देखो, हमारी देखो। सैकड़ों टीकायें लिखी गयीं, महान चोटी के विद्वान लेकिन किसी ने यह नहीं बताया कि कर्म क्या है?, धर्म क्या है?, हम कौन है? गीता के उन विद्वानों ने तो आधे भारत को नीच, अधम, अशुद्ध बता दिया, आधों को भगा दिया। हम नहीं समझते, शास्त्र कोई विद्या के बल पर भी देख सकता है।

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी।।

(मानस, 4/17/7)

समझना है तो मुनि ज्ञानी जानते हैं, उनसे पूछो।

यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥

(मानस, 1/195/6)

यह शुभ चरित को वहीं जान पायेगा जिस पर भगवान की सीधी कृपा हो।

अनुभव में जब काकभुशुण्डि ने भगवान का स्वरूप देखा– करोड़ों सूर्य, अनन्त तारे.... **'अगनित उडगन रवि रजनीसा।'** (मानस, 7/79/5)

भगवान एक प्रकाश हैं। कैसे हैं भगवान?

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ (गीता, 15/6)

सहज प्रकाशस्वरूप उस परमात्मा को, उस परमपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा, न अग्नि ही। वह स्वयं में सहज प्रकाशस्वरूप है। जिनके सामने यह सूर्य जुगनू के तुल्य है, उनको यह सूर्य कौन प्रकाश देगा!

देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥

(मानस, 1/53/7-8)

अनन्त ब्रह्मा, अनन्त विष्णु, अनन्त शिव **'बंदत चरन करत प्रभु सेवा'**। ब्रह्मा, विष्णु, महेश कोई और, प्रभु कोई और। इसलिए,

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ (गीता, 13/17)

वह ज्ञेय ब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति है, तम से अति परे कहा जाता है। वह पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, पूर्ण ज्ञाता है, जानने योग्य है और ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होनेवाला है। साक्षात्कार के साथ मिलनेवाली जानकारी का नाम ज्ञान है। ऐसी जानकारी द्वारा ही उस ब्रह्म का प्राप्त होना सम्भव है। वह सबके हृदय में स्थित है। उसका निवास-स्थान हृदय है। अन्यत्र ढूँढ़ने पर वह नहीं मिलेगा। अतः हृदय में ध्यान तथा योगाचरण द्वारा ही उस ब्रह्म की प्राप्ति का विधान है।

वह ज्योतियों का भी ज्योति है, लेकिन हमें कैसे मिले? सरल उपाय है– हृदय के अन्दर। ठीक इसी आशय का ब्रह्मानन्दजी का यह भजन है–

उजियारा है उजियारा है, घट भीतर पंथ निराला है।

त्रिकुटी महल में ठाकुर द्वारा, जिसके अन्दर चमके तारा।
चहुँ दिश परम तेज बिस्तारा, सुन्दर रूप विशाला है॥
उजियारा है, उजियारा है.....

सात खण्ड का बने मकाना, सूक्ष्म मार्ग दुष्कर जाना।
गुरु कृपा से चढ़े सुजाना पीवै अमृत भर प्याला है॥
उजियारा है, उजियारा है.....

सुरत हँसनी उड़ी अकाशा, देखा अचरज सकल तमाशा।
तीनों भुवन हुआ परकाशा, खुल गया निरगुन ताला है॥
उजियारा है, उजियारा है.....

कर्मन का बन्धन सब टूटा, माया मोह भरा घट फूटा।
ब्रह्मानन्द सकल भय छूटा, मिट गया भव जाला है॥
उजियारा है, उजियारा है.....

- - - - - - -

उजियारा है उजियारा है, घट भीतर पंथ निराला है।

हृदय के अन्दर अविद्या जब काम करती है तो अंधेरा ही अंधेरा है। जब आसुरी सम्पद् काम करती है, अविद्या काम करती है तो अन्धेरा ही अंधेरा है। ये अविद्या, ये आसुरी सम्पद् अनन्त योनियों की ओर ले चलती है। ये स्वयं में प्रवाहमान है, इसको लाना नहीं पड़ता, इसी का नाम संसार, आवागमन, भवाटवी है। लेकिन जब दैवी सम्पद् कार्य करती है और बलवती हो जाती है, जो साधना-पद्धति है वह जागृत हो गयी तो ईश्वरीय प्रकाश प्रवाहमान हो जाता है। इसी हृदयस्थ ईश्वर की ओर संकेत करते हुए संत ब्रह्मानन्द जी कहते हैं–

उजियारा है उजियारा है, घट भीतर पंथ निराला है।

हृदय के अन्दर सड़क बनी है। घट भीतर पंथ माने रास्ता, **'घट भीतर पंथ निराला है'–** हृदय के अन्दर बड़ा निराला एक पथ बना हुआ है और वहाँ ईश्वरीय प्रकाश जगमग-जगमग दिखाई पड़ा। कैसे पाओगे? **'त्रिकुटी मध्य'** अर्थात् भजन हृदय में होता है।

सृष्टि में ऐसी कोई मूर्ति नहीं जो आपको निहाल कर दे। यह तो महापुरुषों के जाने के बाद आ गईं। एक यादव जी बाजार गये और हनुमानजी की एक गढ़ी-गढ़ाई मूर्ति ले आये। आधा पत्थर काटकर कारीगर गढ़ ले गया था, आधे में हनुमानजी को गढ़ने वाला था, टांकी लेकर बैठा था कि यादवजी बोले– अरे, यह भी हमको दे दो, जो मूल्य हो, ले लो।

एक गढ़ा हुआ हनुमान ले लिया और एक बगैर गढ़ा हुआ उसी माप का पत्थर ले लिया। हनुमानजी को मन्दिर में स्थापित कर दिया और उस पत्थर को मन्दिर के सामने गाड़ दिया। उस पत्थर में भैंस बाँधा करे, पड़वा बाँधा करे। मालकिन आवे तो गोबर का झउआ पत्थर के ऊपर रख दिया करे, कभी-कभी ठाठ से बैठ भी जाये। उससे बढ़िया कुर्सी कहाँ मिलेगी!

एक दिन हनुमानजी की मूर्ति वाले पत्थर में से आवाज आई– भैया, हम दोनों तो सगे भाई हैं। तुम्हारी क्या दुर्दशा है। भैंस गोबर करती है, पेशाब करती है, पूँछ मारती है। और हमें मेवा चढ़ता है, सात दिन में एक बार सिंदूर चढ़ता है और पूजा हो रही है– **'जय हनुमान ज्ञान गुण सागर। जय कपीस तिहुँ लोक उजागर॥'** (हनुमानचालीसा)

अनगढ़ पत्थर में से आवाज आई, बोला– भैया! तुमको गुरु मिल गया, गढ़कर तैयार कर दिया। हमें कोई गुरु नहीं मिला है इसलिए लात खा रहा हूँ।

गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट॥ (कबीर)

संत कबीर कहते हैं– गुरु कुम्हार है और शिष्य घड़ा है। जैसे कुम्हार घड़े में भीतर से हाथ का सहारा देकर, बाहर से चोट मारकर घड़े को सही

आकार देता है उसी तरह गुरु भी शिष्य की बुराइयों को दूर करते हुए जीवन को सही रूप देता है। सबका हृदय पाषाण है। सद्गुरु मिल गये तो गढ़कर भगवान का स्वरूप धारण करने वाला हो जाता है।

त्रिकुटी महल में ठाकुर द्वारा, जिसके अन्दर चमके तारा।
चहुँ दिश परम तेज बिस्तारा, सुन्दर रूप विशाला है॥

सत-रज-तम – त्रिगुणमयी प्रकृति है। त्रिगुणातीत हो गया, तीनों शूल जब गढ़ गये तो त्रिशूल पर काशी। अभ्यास करते-करते **'घट भीतर पंथ निराला है।'–** हृदय के अन्दर चिन्तन करो, वह एक निराला पंथ है। यह रास्ता तो पाँव से चला जाता है, वह रास्ता मन की दृष्टि, सुरत से चला जाता है, लौ लगाने से चला जाता है। लौ इतनी उन्नत, सूक्ष्म हो गयी कि सत-रज-तम तीनों गुणों से ऊपर उठ गयी। जिस क्षण तीनों गुण कूटस्थ हुए, उसी क्षण वह महल मिल गया जिसका नाम ठाकुर द्वारा है।

प्रकृति तो रुकावट थी। वह पीछे छूट गयी तो भगवान का ही धाम शेष बचा। हमारे और भगवान के बीच में त्रिगुणमयी प्रकृति रुकावट थी। जहाँ तीनों गुण कूटस्थ हुए, वह महल मिल गया। कूटस्थ होते ही एक महल ऐसा जो भगवान का दरवाजा है।

'जिसके अन्दर चमके तारा'– जिसके अन्दर भगवान की विभूतियों की चमक मिलने लगती है कि कैसे सर्वव्यापी हैं?, कैसे कण-कण में व्याप्त हैं?, कैसे तुम्हारी रक्षा करता है? **'चहुँ दिश परम तेज बिस्तारा'–** और प्रवेश कर गये तो चारों तरफ ईश्वरीय तेज विस्तृत हो गया।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥

(मानस, 2/130/7)

न स्वर्ग स्वर्ग के रूप में रह गया, न नरक नरक के रूप में, न बैकुण्ठ बैकुण्ठ के रूप में रह गया। जहाँ भी दृष्टि पड़ी, प्रभु का ज्योतिर्मय तेज **'चहुँ दिश परम तेज बिस्तारा सुन्दर रूप विशाला है'**– वह भगवान का सुन्दर रूप है, विशाल है।

सात खण्ड का बने मकाना, सूक्ष्म मार्ग दुष्कर जाना।
गुरु कृपा से चढ़े सुजाना, पीवै अमृत भर प्याला है॥

चलने का रास्ता है– सात भूमिकाएँ। **1. शुभेच्छा–** शुभ के प्रति इच्छा, सत्य के प्रति इच्छा। **2. सुविचारणा–** फिर मन्थन करो, विचार करो। विचार स्थिर हुआ तो **3. तनुमानसी–** अब तक तो हम शरीर में तन वाले थे, अब मन में ही तन वाले हो गये। मन की जैसी स्थिति है आपको वैसा ही अगला तन मिलेगा, वैसी ही वर्तमान में आपकी स्थिति है। **4. सत्त्वापक्ष–** जो सत्य है, तत्त्व है वह पक्ष सुदृढ़ हो गया।

संसार में तो कदम-कदम पर संगदोष है। यहाँ आये तो संगदोष छोड़कर और है ही क्या! **5. असंसक्ति–** संग मिले और असंग रहने की क्षमता आ जाये। यह सृष्टि एक पदार्थ है। **6. पदार्थभावना–** पदार्थ का अभाव। देखते हुए भी न दिखाई पड़े। सर्वत्र प्रभु की विभूति दिखाई पड़े, जीव नहीं। और, **7. तुर्यगा–** मनरूपी तुरंग पर असवार होकर चलने की क्षमता आ गयी।

शास्त्रों में द्रुतगति से चलने की उपमा घोड़े से दी गयी है। वायु से तेज चलने वाला यह मन संयत हो गया, इस तुरंग पर चढ़कर गमन करने की क्षमता आ गयी। पहले मन जिधर चाहता था, भटकाकर हमें वहीं फेंक देता था। जब इस मनरूपी तुरंग पर नियन्त्रण हो गया तो तुर्यगा। गा माने गमन। मनरूपी तुरंग पर नियन्त्रण। जिधर चाहे रोक सकते हैं, जिधर चाहे ले सकते हैं। तो शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमानसी, सत्त्वापक्ष, असंसक्ति, पदार्थभावना, तुर्यगा– ये भगवत्-पथ की क्रमोन्नत सात भूमिकायें हैं।

सात खण्ड का बने मकाना, सूक्ष्म मार्ग दुष्कर जाना।

यह खाली कोई मकान नहीं है, यह सूक्ष्म मार्ग है। दुनिया में तो यहाँ चलो, कभी गिट्टी पड़ती है कभी सड़क बनती है लेकिन ये अति सूक्ष्म मार्ग है, मन के निरोध का पथ है। **'सूक्ष्म मार्ग दुष्कर जाना'–** ये सबके लिए दुष्कर है। दुष्कर भी सुगम हो जायेगा जब गुरु की कृपा हो। **'गुरु कृपा से चढ़े सुजाना'–** गुरु की कृपा से सुजान लोग चढ़ जायेंगे।

सुजान वह है जो गुरु के हाथ का यंत्र बन जाये।

गुरु की आज्ञा आवहीं, गुरु की आज्ञा जाय।
कहे कबीर वे संत हैं, आवागमन नसाय॥

गुरु कहते हैं यहाँ बैठो तो बैठो। भले ही वह शेर की गुफा क्यों न हो, दुनिया में तुम्हारे लिए सुविधा है तो वहाँ पर है।

गुरु महाराज को भगवान ने कह दिया– यहाँ बैठना है, तुम्हारी जगह यही है, बैठा दिया। तीन कोठरी इधर, तीन कोठरी इधर बीच की कोठरी के सामने। वास्तव में सवा सौ साल पूर्व सिद्धबाबा वहाँ हुए थे, उनके समय की वह पाठशाला थी। पाठशाला में तो लम्बी-लम्बी कोठरिया होती हैं। सामने चबूतरा था, उसके आगे कुआँ था। कुआँ झाड़ियों से बन्द हो चुका था, किसी को नहीं मालूम यहाँ कुआँ भी है। चार कदम घूमे तो सर्प के ऊपर पाँव पड़ गया, सर्प ने लपेट लिया। पाँव को झटका तो वहाँ गिरा धड़ाम!.... सीधा होकर चल दिया। सर्प के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, पूरा दब गया था तब भी नहीं, अपनी मस्ती में चला जा रहा था। महाराज कहें– हो, रोंवा फूट गये, छः हाथ लम्बा काला भुजंग।

फिर बाद में जब घूमने निकले तो अन्तिम कोठरी... तीसरी कोठरी में रोज बदल-बदलकर हड्डियाँ, चमड़े के टुकड़े, खून, माँस के टुकड़े। तब महाराजजी सोचे– ये रोज-रोज बदल-बदलकर कौन फेंक जाता है?, आखिर इसमें रहता कौन है?

सातवें दिन भजन से थोड़ा चित्त हटाकर उधर ध्यान दिया तो रात को नौ बजे एक शेर अन्दर जा रहा था, बाहर आ रहा था, महाराज को देख रहा था। महाराज और उसमें इतनी दूरी। छलांग लगाया होता तो एक ही छलांग की दूरी थी। वह अन्दर जा रहा था, बाहर आ रहा था, पूँछ ऐंठ रहा था, देख रहा था तब महाराज ने कहा– अरे बेटा! तू भी यहीं रहता है! अब भगवान ने हमको यहाँ भेजा है तो तू अपनी जगह बदल ले। पूरा जंगल तुम्हारा है, ठाठ से रहो, ये कोठरिया भर छोड़ दो, भगवान ने हमको रहने को भेजा है। जैसे कोई आपस में आदमी से बात करे।

दूसरे दिन बड़े सवेरे एक जंगली कोल भील दिखाई पड़ा। महाराज ने कहा– क्यों रे! इसमें झाड़ू न लगा देइ इस कोठरी में? वह बोला– हो महाराज! उसने पत्तियों का झाड़ू बनाया और कचरा निकालकर, हड्डी वगैरह बाहर फेंक दिया, तुम्बड़ी में पानी भरा, छिड़क दिया। उस दिन से शेर उस कोठरी में नहीं गया। जब तक जिया, वहीं रहा, कभी ऊपर छत पर बैठकर पाँव लटकाकर देखा करे, कभी इधर, कभी इधर, कभी उधर ब्रह्मशिला पर, पर कभी कोठरी के अन्दर नहीं गया। भगवान ने कहा– यहाँ बैठना है तो बैठना होगा। आज्ञापालन ही भजन है। यही ये महापुरुष कह रहे हैं।

'सात खण्ड का बने मकाना'

भगवान के धाम वाला मकान सात खण्ड का है। सात खण्ड कोई जोड़ा हुआ घर नहीं है, यह एक रास्ता है, मार्ग है– **'सूक्ष्म मार्ग दुष्कर जाना'**। और ये इतना सूक्ष्म है तो हम अनजान आदमी कैसे जायेंगे? तो **'गुरु कृपा से चढ़े सुजाना'**– सुजान वह है जो आज्ञापालन करे।

गुरु कृपा से चढ़े सुजाना पीवै अमृत भर प्याला है॥
उजियारा है, उजियारा है....

मृत कहते हैं नाशवान को, मरणधर्मा को। अमृत कहते हैं अविनाशी को। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! सृष्टि मरणधर्मा है। यह शरीर नाशवान है, अनित्य है, नश्वर है। आज है तो कल नहीं रहेगा। पूरी सृष्टि बदलती रहती है, केवल आत्मा ही अमृत तत्त्व है, शाश्वत सत्य है, सनातन पुरुष है। इसे शस्त्र नहीं काट सकता, अग्नि नहीं जला सकती, वायु नहीं सुखा सकता। हम सनातनधर्मी हैं, सनातन केवल वह परमात्मा है। हम शाश्वत के पुजारी हैं, शाश्वत वह परमात्मा है। मृत्यु से परे उस अमृत तत्त्व आत्मा के साक्षात्कार के साथ मिलने वाली जानकारी ज्ञान है। एक बार ज्ञान हो गया तो प्याला भरकर पीओ फिर कभी कोई चाह नहीं रह जायेगी। आगे कुछ है ही नहीं तो ढूँढ़ोगे क्या! तो, **'पीवै अमृत भर प्याला है।'**

उजियारा है उजियारा है, घट भीतर पंथ निराला है।

फिर वहाँ प्रकाश ही प्रकाश। और यह रास्ता हृदय से जाता है। संयम से इन्द्रियों का दमन, मन का शमन, त्याग, तितिक्षा और चित्तवृत्ति का निरोध कर सुरत लगाने से जाता है। यह सुरत से ही चला जाता है–

सुरत हँसनी उड़ी अकाशा, देखा अचरज सकल तमाशा।
तीनों भुवन हुआ परकाशा, खुल गया निरगुन ताला है।।

'सुरत हँसनी उड़ी अकाशा'– मन की दृष्टि का नाम सुरत है। गुरु महाराज कहें– ''सार, सुरत हराम है...। फूल सूँघें जिसमें खूशबू न हो, तो देखने में बड़ा सुघड़ है लेकिन भीतर कुछ नहीं, वह सुरत हराम है।'' ''सुरतिये देखे लायक है, दो कौड़ी के हैं सार।''–जब हम लोगों को बिगड़ें तो यही कहें। ''ऊपर से बादाम के बोकला की तरह फूला है, भीतर कोई दम नहीं।''

मन की दृष्टि का नाम सुरत है। पहले श्वांस का भजन करो, सुरत लगेगी। हम न करें, तब भी श्वांस सिवाय नाम के कुछ कहती ही नहीं। सुना भर करें। सुनते-सुनते सुरत जब लग गयी तब यह मन हंस है।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।।

वे संत हंस हैं जो ईश्वरीय गुणरूपी दूध को ग्रहण कर लेते हैं, प्रकृति के विकाररूपी वारी का त्याग कर देते हैं। वह सुरत हंसनी है।

कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना।।

(मानस, 1/5/4)

विधाता का प्रपंच गुण-दुर्गुणों से सना हुआ है। वह सुरत हंसिनी हैं, ईश्वरीय दूधरूपी गुण को ग्रहण कर लेती है, विकाररूपी वारी को त्याग देती है। नीर-क्षीर-विवेक जिसमें है वह हंस कहलाते हैं। शेर को घास खिलाओ तो क्या जियेगा? हंस भी दूध के अलावा पानी से कभी नहीं जियेगा, वही उसका जीवन हो गया।

'सुरत हँसनी उड़ी अकाशा'

आकाश कहते हैं पोल को, शून्य को, रिक्त स्थान को। सुरत लगते-लगते आकाश चढ़ गई। न भला उद्वेग उठता है कि ऐसे भजन करो यह मिलेगा, न बुरा उद्वेग उठता है कि यह घाटा लग गया, यह मुनाफा हो गया। सुरत जिस क्षण आकाशवत्, शून्य में स्थिर हो प्रवेश पायी, **'सुरत हँसनी उड़ी अकाशा'**– सुरत आकाश में, शून्य में जिस पल स्थिर हुई, उसी पल के मध्य–

'देखा अचरज सकल तमाशा।'

जो आश्चर्यजनक है, वाणी व्यक्त नहीं कर सकती, यह चमड़ी की आँखें देख नहीं सकती, जिसको यह शरीर स्पर्श नहीं कर सकता, वह प्रभु-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

(मानस, 1/117/5-8)

बगैर पैर के चलता है, बगैर कानों के सुनता है, बगैर हाथों के कार्य करता है, बगैर शरीर के स्पर्श करता है। हर तरीके से अलौकिक करनी। लोक में जो घटित होता है वह है ही नहीं। जिसको इस प्रकार **'बेद'** और **'बुध'**–प्रत्यक्षदर्शी महापुरुष लोग वर्णन करते हैं-

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान।।

(मानस, 1/118)

इस प्रकार वेद, बुध गाते हैं और मुनि उसका ध्यान धरते हैं जो दिखाई नहीं देता। बुलाओ कैमरामैन, खींचे फोटो.... बगैर पैर के कोई चल रहा है, बगैर शरीर के स्पर्श कर रहा है।

सुरत हंसनी जिस क्षण आकाशवत् हुई, संकल्प-विकल्प से रहित शून्य में जिस क्षण स्थिति आई तो उसको आश्चर्य दिखाई पड़ा। आश्चर्य क्या था? **'देखा अचरज'**– आश्चर्यजनक, जो इन आँखों से नहीं देख सकते।

अर्जुन बचपन से भगवान का साथी था। भगवान ने दस अध्याय तक बहुत समझाया, नहीं समझा, टुन-टुन करता ही रह गया। जब दृष्टि मिली, देखा तो क्षुद्र त्रुटियों के लिए क्षमायाचना करने लगा– प्रभो! मैं न आपके आदि का, न अन्त का ही निर्णय कर पा रहा हूँ। अमित प्रभाव वाले आप कौन हैं? लगा क्षमा माँगने– हमने कभी 'हे यादव!', 'हे कृष्ण' कह दिया था, उन त्रुटियों के लिए पिता जैसे प्रिय पुत्र को क्षमा करता है, सखा सखा के अपराध क्षमा करता है, पति पत्नी के अपराध क्षमा करता है, वैसे ही प्रभो! आप क्षमा कर दें।

जब अर्जुन को दृष्टि मिली, देखा तो बोला– न जाति है न वर्ण, इन सबसे परे। यह न काले हैं न गोरे, रूप-रंग से परे हैं। सखा कहा, इनके समान कोई नहीं, सखा किस बात का! सखा तो बराबर का पद होता है। अर्जुन ने देखा, लेकिन दृष्टि मिली तब। **'देखा अचरज'–** उस आश्चर्यजनक स्वरूप को देखा, बस साधना सफल हो गयी। **'सकल तमाशा'–** इसे देखते ही जो तमाशा हम देखना चाहते थे उसमें सफलता मिल गयी।

'तीनों भुवन हुआ परकाशा'

तीनों लोकों में सर्वत्र ईश्वरीय प्रकाश हो गया।

'खुल गया निरगुन ताला है॥'

गुणों से अतीत, सत-रज-तम प्रकृति से अतीत ज्योतिर्मय परमात्मा के निवास का ताला खुल गया, योग युक्ति की कुंजी मिल गयी, अब प्रवेश करो।

कर्मन का बन्धन सब टूटा, माया मोह भरा घट फूटा।
ब्रह्मानंद सकल भय छूटा, मिट गया भव जाला है॥

'कर्मन का बंधन सब टूटा'– अशुभ वह है जो संसार में पटके। शुभ– नियत कर्म जो करना था, कर्तव्य था, कर्म माने आराधना, कर्म माने चिन्तन। वह सारा का सारा बंधन टूट गया।

'माया मोह भरा घट फूटा'

हृदय में जहाँ संस्कार पड़ा था, वह घड़ा फूट गया। वहाँ प्रवेश करते ही संस्कार की रेखायें खत्म। न शुभ संस्कार पड़ेंगे, न अशुभ। संस्कारों के लेख जो हमें आवागमन में भटका रहे थे, वह भी मिट गये। नियत कर्म, जो करना अनिवार्य था, करके यहीं तक तो हमें जाना था, वह मिल गया तो **'भजन हमारा हरि करे, हम पायो विश्राम।'** आत्मा विदित है, तृप्त है, अब उसको कर्म करने से न लाभ है, न छोड़ने से कोई क्षति। यह महापुरुष लोकहित के लिए करते हैं, कारण कि महापुरुष जो प्रमाण कर जाता है, पीछे वाली पीढ़ियाँ उसी का अनुसरण करती हैं। भगवान कहते हैं– यदि मैं सावधान होकर न करूँ तो समाज बरतने लग जायेगा, और भटक जायेगा, वर्णसंकर हो जायेगा, और मैं वर्णसंकर का कर्ता होऊँगा।

स्त्रियों के दूषित होने से तो वर्णसंकर सुना गया, यदि स्वरूप में स्थित महापुरुष नियत कर्म (जो ईश्वरपर्यन्त दूरी तय कराता हो वह कर्म) न करें तो समाज वर्णसंकर हो जायेगा। वास्तव में इस आत्मा का वर्ण है परमात्मा।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

(मानस, 7/116/2)

जीव ईश्वर का विशुद्ध अंश है। उतना ही पावन, जितना भगवान।

सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं।।

(मानस, 7/116/3)

माया के बस में यह जीव कीर (तोता) और बन्दर की तरह बँधा है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। (गीता, 15/7)

जीव मेरा विशुद्ध अंश है। जितना भगवान पवित्र, उतना ही। बीच में कर्मों के लेख से थोड़ी दरार पड़ गयी थी तो,

कर्मन का बन्धन सब टूटा, माया मोह भरा घट फूटा।

माया-मोहवाला घड़ा फूट गया। जिस घड़े में माया रहती थी, वह तो फूट गया। अविद्या का, आसुरी सम्पद् का वह घड़ा फूट गया।

'ब्रह्मानन्द सकल भय छूटा'– ब्रह्म का आनन्द मिला, सफलता मिली, अब निर्भय हो गया। भय सदा के लिए समाप्त हो गया।

'मिट गया भव जाला है।'– भवजाल ही मिट गया।

उजियारा है उजियारा है, घट भीतर पंथ निराला है।

केवल उजियारा है। कहाँ? हृदय में, चिन्तन में सुरत को लगाओ। **'घट भीतर पंथ निराला है'–** हृदय के अन्दर एक रास्ता निराला है, वहाँ प्रकाश ही प्रकाश है। इसलिए भजन आप कहीं भी कर सकते हैं। खाना खाते, पानी पीते, शौच जाते, चक्की पीसते.... यह दुनिया वाला धन्धा अपनी जगह, भजन अपनी जगह।

बाम्बे में एक सेठजी आये, बोले– ''महाराजजी! एकान्त में बात करूँगा।'' बहुत बड़े सेठ रहे, लोग कह रहे थे, हमें तो आप ही लोगों जैसा दिखाई दे रहे थे। लेकिन बहुत बड़े सेठ। हम बोले– ''यहाँ जो समस्या आती है, सबकी है, बोलिए न।'' वे बोले– ''बहुत गूढ़ बात है।'' हम बोले– ''एकान्त बनाओ सब।''

जहाँ एकान्त हुआ तो सेठ बोले– ''महाराजजी! विदेशों में चार जगह मेरी फैक्ट्री है, रंगून में, रसिया में, इंग्लैण्ड में.... एकाध और....। और यहाँ प्रत्येक शहर में मेरा शोरूम है। इतने फोन, टेलीग्राफ आते हैं कि मुझे एक मिनट समय नहीं मिलता। मैंने जब से आपकी गीता देखी है, मैं भजन करना चाहता हूँ, समय ही नहीं मिलता। जब शौच जाता हूँ तो बैठकर ओम्-ओम्-ओम्..... कोई गलती तो नहीं कर रहा हूँ?'' हम बोले– ''24 घण्टे गलती करते हो, उतना ही समय आपका सार्थक है, सही कर रहे हो। शौच तुम्हारे लिए खराब है, भगवान के लिए कोई खराब नहीं।''

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी।।

(मानस, 3/32/2)

सड़ा माँस खाने वाला अधम गीध... यह तो बाहरी वातावरण था, हृदय से भगत था। भगवान गये, गले लगाया, जहाँ पिता दशरथ गये वहीं

भेज दिया। भगवान भाव के, श्रद्धा के भूखे हैं। मन से, हृदय से चिन्तन को इष्ट के चरणों में जोड़ना है। यह सुरत हँसनी उड़ी और आकाशवत् हो गयी तब तमाशा देखा। संत कबीरदासजी कहते हैं–

मोरी सुरति सुहागिन जाग री॥
का सोवत है मोह निसा में, उठ के भजनिया में लाग री॥

भजन मन की दृष्टि, इन्द्रिय-संयम, मनोनिग्रह से आगे बढ़ता है। आप छः महीने मत नहाओ, कोई बात नहीं। तो हम बोले– बस उतना ही सही कर रहे हो। वह बोला– बस महाराज, भ्रम दूर हो गया, अब मैं भजन करूँगा।

एक सेठ बनिया की इतनी लगन लग गयी कि दुकानदारी सब चौपट हो गयी। सेठानी कहें– जब से हमारे सेठ महाराज के यहाँ जाने लगे, क्या बतावें बहिनी, बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी। कुछ हो गया तो माई लोग पहले गुरु को ही उलाहना देती हैं।

सेठ ने गुरु महाराज से पूछा– भगवन्! घरवालों ने तो जीना मुश्किल कर दिया है, क्या करुँ? गुरु महाराज ने कहा– अरे कहीं उल्टी-सीधी दुकान खोल ले। घरवाले सोचेंगे काम कर रहा है, कर भजन। भजन में कटौती न होने पावे।

सेठ ने उस गलियारे में अपनी दुकान खोली जहाँ लोगों का आना-जाना था ही नहीं। अब भगवान का मन! सेठ की इतनी साख जम गयी कि सेठ के यहाँ पाँच साल का बच्चा भी भेज दो, सेठ कच्चा माल नहीं दे सकता। पूरे देशभर की भीड़ वहीं टूट पड़ी।

दिनभर तौलते-तौलते सेठ को फुर्सत ही न मिले। रात को जब दुकान बन्द करें तो लोटा लेकर भागे भूत की तरह नाले की ओर। पहले फ्लश लैट्रिन कहाँ थी! तो नाले की ओर भागे। नित्यक्रियाओं से निवृत्त होना भी जरूरी था। अब शौच करते जाय और राम-राम-राम-राम भी जपते जाय। आठ से नौ, दस, ग्यारह, बारह... कभी-कभी रात्रि के एक बज जाय। जब संतोष हो जाय कि दिनभर का नामजप पूरा हो गया तब घर आवे और जो रूखा-

सूखा रखा रहे, खा लिया करे, सबेरे काम पर चले जाया करे। यह उसका नियम बन गया था।

छः महीना बीता, एक दिन हनुमानजी की निगाह पड़ गयी, बोले– यह देखो, अजीब दृश्य है। 24 घण्टे पड़ा है, इसको शौच करते समय ही भगवान का नाम जपना था। यह बनिया हमारे प्रभु के पावन नाम को भी भ्रष्ट करने में लगा है। इसको थोड़ी नसीहत दे दूँ।

तो एक घूसा मारा। बनिया टस से मस नहीं हुआ। फिर पीठ पर एक लात मारी। बनिया टस से मस नहीं हुआ। हनुमान बोले– ओह! मेरी लात लगी और हिला तक नहीं। हनुमानजी रोष में आ गये। गदा एक तरफ रखा, पन्द्रह-पचास दण्ड-बैठक लगाया, शरीर को बढ़ाया और झूमकर, उछलकर वह लात मारी जो मेघनाद और कुम्भकर्ण की छाती में मारा था। फिर भी बनिया टस से मस नहीं हुआ।

'उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन।' (मानस, 7/112/1) हनुमान के हृदय में प्रेरणा हुई– अरे! हमने किस कुपात्र को छू दिया, लो हम भी अशुद्ध हो गये। सेवा में तो देर हो जाना चाहती है। हनुमान एक ऐसे सेवक थे, सेवा में कभी देर हुई ही नहीं। अर्धरात्रि को आदेश मिला कि सुबह होने से पहले हिमालय से संजीवनी लाओ तो ले आये। सेवा में तो देर हो जाना चाहती है।

सटाक सरयू में डुबकी लगाया और भगवान की सेवा में पहुँच गये। वहाँ पूरा महल झनझना रहा था– आह-आह-आह। भगवान कराह रहे थे, महल झनझना रहा था। वैद्य-हकीम सब फेल। तब हनुमान ने कहा, ''प्रभो! ऐसी कौन-सी बीमारी हो गयी?'' भगवान बोले, ''पूछो मत हनुमान जी, आज हम लात ही लात बहुत मारे गये।''

हनुमान गरम पड़ गये, गदा लेकर खड़े हो गये– ''रावण मारा गया, जितने असुर थे, सब मारे गये, अब दुनिया में ऐसा कौन जीवित है जो प्रभु की ओर लात उठावे? आप नाम बता दें, मैं अभी सफाया किये देता हूँ।'' भगवान बोले, ''आप ही ने तो मारा।'' हनुमान बोले, ''प्रभो! सेवक से इतनी

बड़ी भूल भला कैसे हो सकती है? रामजी बोले, ''क्या उस बनिये को नहीं मारा था?'' हनुमान बोले, ''प्रभो! आपको कैसे लग गयी?''

भगवान बोले–

जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धनु भवन सुहृद परिवारा।।
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।।

(मानस, 5/47/4-5)

जननी माने माता, जनक माने पिता, बंधु माने भाई, सुत माने लड़का, प्रिय पिरवार, परम हितैषी, इज्जत-प्रतिष्ठा– सबके ममत्व के धागे समेटकर, उन धागों की रस्सी बनाकर मन को जो मेरे चरणों में बाँध देता है–

तजि मद मोह कपट छल नाना। सपदि करहिं तेहि साधु समाना।।

(मानस, 5/47/3)

मद-मोह त्याग करके जो चरणों में बाँध देता है, छल-कपट त्याग करके निश्छल हृदय से जो लग जाता है, तत्काल उसको साधु के समानान्तर स्थिति दे देता हूँ। वो तो सारे ममता के धागे समेटकर, मन को मेरे चरणों में बाँधकर बैठा था।

अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसे।।

(मानस, 5/47/7)

ऐसे सज्जन के हृदय में मैं नहीं वास करता, ऐसा सज्जन ही मेरे हृदय में निवास करता है। वह तो मेरे हृदय में बैठा था। ममत्व के धागे समेटकर, मेरे चरणों में रस्सी बनाकर मन को बाँधकर बैठा था, वह तो मेरे हृदय में निवास कर रहा था। आपने जमकर उछलकर जो लात मारी, कवच के रूप में मैं था, मुझे ही झेलना पड़ा। एक तो कमर तोड़ दिया और कहते हो इस भगत से इतनी बड़ी भूल भला कैसे हो सकती है।

हनुमान तुरन्त भागकर बनिया के पास गये, बोले– ''सेठ! तुम धन्य हो, तुम महान हो।'' तब सेठ का ध्यान टूटा, समाधि टूटी। उसने देखा, हनुमानजी सामने खड़े हैं। वह तुरन्त चरणों में गिर पड़ा– ''प्रभो! आप कब

पधारे?'' हनुमान बोले, ''अभी लात ही लात मारकर गये, तब नहीं देखा?'' सेठ ने कहा, ''नहीं भगवन्! मैंने नहीं देखा। आप आओ, मैं उठकर प्रणाम न करूँ, भला ऐसा कैसे हो सकता है। क्षमा करे प्रभु! वास्तव में हमने नहीं देखा।''

वह भजन ही कैसा जब दाहिने-बाँये दिखाई देता है। करो भजन, यह अवस्था अवश्य आयेगी। आज दो घण्टा बैठे हो, दस मिनट मन लगता है। कुछ काल बाद यह सुरत हंसनी आकाशवत् हो जायेगी तो भगवान का आश्चर्यजनक स्वरूप और कृपा मिल जायेगी, तीनों भवनों में एक जैसा प्रकाश और गुणातीत होनेवाला ताला खुल जायेगा, कर्मों के लेख मिट जायेंगे, माया-मोह भरा घड़ा फूट जायेगा।

ब्रह्मानन्द सकल भय छूटा, मिट गया भव जाला है।।
उजियारा है उजियारा है, घट भीतर पंथ निराला है।।

ब्रह्म का आनन्द मिला, सकल भय छूट गया 'मिट गया भव जाला है'– भव का जाल मिट गया और सकल भय छूट गया। महापुरुष की वाणी कहीं से चले वह साधनापरक होती है और उसके बाहर कभी कुछ बोल भी नहीं सकते, कह नहीं सकते। गीता आपका धर्मशास्त्र है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।। (गीता, 12/20)

इस धर्ममय अमृत को जैसे-जैसे कहा गया, गीता धर्ममय अमृत है। इसको यथावत् जो आचरण करता है वह भक्तों में अति उत्तम भक्त मुझे मान्य है। और भगवान कहते हैं, यही आपका धर्मशास्त्र है।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। (गीता, 15/20)

अर्जुन! ये गोपनीय से भी अति गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया। इसे जानकर तुम परम श्रेय को, सदा रहने वाली शान्ति और सदा रहने वाला

धाम और जीवन को प्राप्त कर लोगे अर्जुन! और मनुष्य को चाहिए क्या? और भी कोई शास्त्र है?? तो–

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ (गीता, 16/23)

इस गीतोक्त शास्त्रविधि को त्यागकर अन्य-अन्य विधियों से जो भजते हैं उनके जीवन में न सुख है, न सिद्धि है, न परम गति है। वह सबसे भ्रष्ट हो जाता है। न इस लोक में सुख है, न मरणोपरान्त।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ (गीता, 16/24)

इसलिए कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। भली प्रकार अध्ययन करके, आचरण करके तू मुझे प्राप्त होगा। इसलिए परमात्मा के किसी दो-ढाई अक्षर के ओम्-राम या शिव में से एक नाम का जाप करते हुए हृदयस्थ ईश्वर को विदित करना है। वहाँ तक पहुँचने का मार्ग, साधन-पथ सद्गुरु महाराज की कृपा से प्रशस्त होता जायेगा।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

अब तो अजपा जप मन मेरे

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।

(मानस, 7/126/1-2)

वह धर्म का विशेषज्ञ है, धर्मज्ञ है, गुणी है, ज्ञाता है, पण्डित है, दानदाता है, उसके पास देने के लायक सामग्री है। कौन? **'राम चरन जाकर मन राता।'**

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।

(मानस, 7/126/3)

दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।

(मानस, 7/48/8)

वह नीति में निपुण है, परम सयाना है। वेदों का सिद्धान्त उसने भली प्रकार जाना है, भले ही अँगूठाछाप क्यों न हो। क्रिया को न जानते हुए भी क्रिया में दक्ष है, स्कूल का मुँह न देखते हुए भी वेदों का प्रगामी विद्वान है। कौन? **'राम चरन जाकर मन राता'**– राम – एक परमात्मा – के चरण में जिसका मन अनुरक्त है।

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत।। (मानस, 7/127)

हे पार्वती! वह सारा कुल कृतार्थ है जिस कुल में किसी एक का राम – उन परम प्रभु – के चरणों में अनुराग पैदा हो गया हो।

भोलेनाथ शिव ही मानस के निर्माता हैं। उन्होंने निर्णय दिया कि धार्मिक कौन? जिसका एक प्रभु के चरणों में मन अनुरक्त है। कदाचित् प्रभु के भजन के बिना और भी किसी तरीके से कल्याण चाहता है तो–

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान।। (मानस, 7/78क)

राम – एक परमात्मा – के भजन के बिना कल्याण चाहता है तो वह बगैर सींग, पूँछ का पशु है। केवल सींग नहीं है, पूँछ नहीं है, है पक्का बैल। महापुरुष इससे ज्यादा कितनी ताड़ना दें!

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।।

(मानस, 7/122क)

पानी मथने से भले ही घी निकल जाये, बालू पेरने से तेल निकल आवे, यह असंभव भले ही संभव हो जाए, बगैर हरि के भजन के कोई भव तरता ही नहीं, यह अकाट्य सिद्धान्त है। भजन एक परमात्मा का। और प्रभु के भजन के लिए नाम, रूप, लीला और धाम – साधना के चार अंग हैं। पहले नाम जपो। नाम से रूप मिल जाएगा।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।

(मानस, 1/20/6)

जब हृदय में प्रेम से, विशेष स्नेह से डोरी लग जाएगी तो रूप हृदय में आ जाएगा। रूप आ जाए, रूप समझ में आ जाए तब फिर ध्यान धर लेना। जहाँ दो मिनट भी स्वरूप पकड़ में आया तो लीला। भगवान अपने विभूतियों से परिचय करवाने लगते हैं, उसका नाम है लीला। उन्हीं के द्वारा दृश्य देखते हुए, रास्ता समझते हुए जब उस मूल के स्पर्श पर पहुँचा तो–

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

(मानस, 2/126/3)

उन्हें जानकर उसी स्वरूप में स्थिति मिल गई। अब धाम अर्थात् प्रभु का धाम आपका निवास स्थान है।

तवन घर चेतिहे रे भाई, तोहरा आवागमन मिटि जाई।। (कबीर)

तो सर्वोपरि है नाम। नाम पहले कैसे भी जपो,

तुलसी जाके मुखन ते, धोखेहु निकसे राम।
ताके पग की पानहीं, तुलसीदास के चाम॥

तुलसी कहते हैं– धोखे से भी जिस भक्त के मुख से राम निकल गया, मेरी चमड़ी से उस भक्तशिरोमणि के चरणों की पादुका बन जाए। तुलसीदासजी उस पर इतने अधीर, दयार्द्र हो गए कि वह भाग्यशाली है। महापुरुष दूसरों की समृद्धि देखकर सुखी होते हैं; और खल...आसुरी माया का जब पर्दा पड़ा है तो दुःख देखकर सुखी होते हैं। महापुरुष दूसरों का दुःख देखकर विकल हो जाते हैं। उनसे दुःख नहीं देखा जाता, सुखी देखकर सुखी होते हैं।

पहले नाम कैसे भी जपो, **'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।'** (मानस, 1/27/1) चिन्तन ऊपर उठ जाने पर नाम स्वास से जपा जाता है। पहले प्राइमरी का मुँह नहीं देखा तो इण्टर में कौन पूछेगा? तो पहले बैखरी, फिर मध्यमा, पश्यन्ति और परा। परा वाणी का नाम जब जागृत हो जाता है तो उसका नाम है अजपा। हम न जपे और जाप हमारा साथ न छोड़े। एक बार सुरत लग गई तो ध्वनि प्रसारित हो गई। श्वास आई तो ओम् तो गई तो ओम्-ओम्-ओम्... एक लहर पैदा हो गई। अन्य चिन्तन नहीं। मन जैसे है ही नहीं, इतने शान्तवृत्ति में प्रवाहित हो जाए, इसका नाम है अजपा। हम न जपे और जाप हमारा साथ न छोड़े। इस स्तर में जहाँ चिन्तन, नाम-जप पहुँचा तो अजपा। नाम-जप की चार श्रेणियाँ हैं, यह चौथी श्रेणी, अन्तिम श्रेणी का जाप है। एक भक्त को जब यह जाप मिल गया तो उसकी खुशी का वारापार, ठिकाना नहीं। वह अपने मन को समझाने लगा–

अब तो अजपा जप मन मेरे॥
सुर नर असुर टहलुआ जाके, मुनि गन्धर्वहिं चेरे॥
दस अवतार देखि मत भूलो, ऐसन रूप घनेरे॥
असल पुरुष के हाथ बिकाने, जब ते नैनन हेरे॥
अविगत अगम अगोचर अवधू, संग फिरत हैं तेरे॥
कहे मलूक अब चेत अचेता, काल न आवत नेरे॥

अब तो अजपा जप मन मेरे।

अरे मन! जब अजपा पकड़ में आ गया तो लापरवाही न कर। अब और तब में पूर्व और पश्चिम का अन्तर है। तब, जब भजन शुरू किया था, अब जो स्थिति है, विशेष है कि अजपा जागृत हो गई है। अजपा जागृत हो गई, अजपा पकड़ में आ गया तो,

सुर नर असुर टहलवा जाके, मुनि गंधर्व हैं चेरे।।

अरे मेरे मन! अब जब अजपा जागृत हो गया तो केवल अजपा जप। अजपा जपने से लाभ क्या? सुर, नर और मुनि टहलवा हो गये। इस मानव समाज में **'सुर'**– जिनके हृदय में दैवी सम्पद् प्रवाहित है, **'नर'**– जो इन विकारों से मुक्त है। विकार जिन्दे हैं, आक्रमणकारी के रूप में खड़े हैं। यदि एक भी विकार ने छू दिया तो,

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हि संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।। (मानस, 7/121क)

नर मर जाएगा, ये जीव जड़ हो जाएगा। नर वो जिसके ऊपर मायारूपी नारी का प्रभाव न पड़े; हमलावर के रूप में माया खड़ी है, बराबर छिद्रान्वेषण कर रही है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! सृष्टि में मनुष्य केवल दो प्रकार का होता है– असुरों जैसा और देवताओं जैसा, क्योंकि दो ही वृत्ति है– आसुरी सम्पद्, दैवी सम्पद्; या आसुरी वृत्ति, दैवी वृत्ति। जिसमें आसुरी सम्पद् कार्य करती है वह असुरों जैसा है। और जिसमें दैवी सम्पद् कार्य करती है वह देवताओं जैसा है। अर्जुन! तू शोक मत कर, तू दैवी सम्पद् को प्राप्त हुआ है, तू मुझे प्राप्त होगा। अर्जुन! मेरे अविनाशीस्वरूप को प्राप्त करोगे, कारण कि– **'दैवी सम्पद्विमोक्षाय'** (गीता, 16/5)– दैवी सम्पद् परम कल्याण के लिए है, तू बिल्कुल शोक मत कर। और आसुरी सम्पद् अधोगति, नीच योनियों में भटकाने के लिए होती है। अर्जुन! सच पूछो तो प्राणियों के स्वभाव दो प्रकार के होते हैं, देवताओं जैसा और असुरों जैसा। जिसमें दैवी सम्पद्

बलवती है वह देवता, आसुरी सम्पद् बलवती है तो असुर। एक सगा भाई देवता, दूसरा सगा भाई असुर हो सकता है। सृष्टि में मनुष्य दो ही प्रकार के हैं। या तो निवृत्तिमार्गी होगा, दैवी सम्पद् धारण करने वाला। परमदेव परमात्मा का देवत्व स्नेह आपमें अर्जित होता जाये और उसको करने में समर्थ हो, उसको दैवी सम्पद् कहते हैं। और परमदेव परमात्मा के विपरीत आसुरी सम्पद्। अ माने नहीं, सुर माने देव। उस परमदेव परमात्मा का देवत्व न अर्जित होता हो, न उतरता हो, विपरीत दिशा, प्रकृति के अंधकार की ओर गतिशील हो, उसे आसुरी सम्पद् कहते हैं। आसुरी सम्पद् यानि प्रवृत्ति मार्ग, वह सदा प्रवृत्त रहेगा। पहुँचेगा कहीं नहीं और चाल कभी नहीं रुकेगी, अनन्त योनियों का भ्रमण। और सदा ही प्रवृत्ति मार्ग में नहीं रहेगा। जब कभी सत्पुरुषों का शरण-सान्निध्य मिल जायेगा तुरन्त वह वृत्ति शान्त हो जाएगी, दैवी सम्पद् जागृत हो जाएगी। यह आती-जाती रहती है। दैवी सम्पद् में बीज का नाश नहीं है। तो दैवी सम्पद् से युक्त **देवता** भी सेवक, और आसुरी सम्पद् युक्त **असुर** भी सेवक। और **'नर'** मध्यम, जिसे दोनों का ज्ञान नहीं। **'सुर नर असुर टहलवा जाके'**– वह सेवा में लग गए।

सुर नर असुर टहलवा जाके, मुनि गंधर्व हैं चेरे।

'मुनि'– मनसहित इन्द्रियाँ जिसकी मौन हैं, मननशीलता की चरम सीमा पर है वह मुनि है। **'गन्धर्व'–** जिनमें ईश्वरीय गायन जागृत हो गया हो, जिसमें भजन जागृत हो गया हो वह गन्धर्व। सतत् चिन्तन में प्रवृत्ति जिसमें जागृत हो, श्वास-प्रश्वास का चिन्तन जिसमें जागृत हो, वह गन्धर्व है। बाहर गंधर्व तो कथकों को कहते हैं। मुनि साधना की उन्नत अवस्था का नाम है, गन्धर्व भजन की जागृति का नाम है, प्रवेशकाल है तो **'मुनि गंधर्व हैं चेरे'–** ये मुनि, गंधर्व चेले हैं, शिष्य हैं।

'अब तो अजपा जप मन मेरे।'

रे मेरे मन! जब अजपा जागृत हो ही गई है, पकड़ में आ गई है तो एक पल भी लापरवाही न कर, अहर्निश चिन्तन कर।

दूसरी बात, हम भजन किसका करें? अवतार अनन्त हुए हैं–

नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा।।

(मानस, 1/32/6)

सौ करोड़ बार.... अपार तो रामायण है, उतनी बार राम के अवतार।

जब जब राम मनुज तन धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं।।
तब तब अवधपुरी मैं जाऊ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ।।

(मानस, 7/74/2)

अवध में जब-जब राम मनुष्य तन धारण करते हैं तो मैं वहाँ पहुँच जाता हूँ। काकभुशुण्डिजी कहते हैं– अवध में अनन्त बार अवतार हो गया। अवध में केवल जन्मे हैं राम और ऋषभदेव। दत्त भगवान का जन्म हुआ था चित्रकूट में, कपिल का जन्म हुआ था जंगलों में, नारद दासीपुत्र थे। और कछुआ, मछली पानी में; शेर, सुअर जंगल में। अयोध्या में तो कोई नहीं हुआ। यह क्या है?

वध कहते हैं नाशवान को। अवध कहते हैं जिसका वध न हो। अवध्य है, अशोष्य है, अनन्त है अपरिवर्तनशील एक आत्मा है। आत्मिक जागृति में ही भगवान का अवतार होता है किन्तु शास्त्रों में दस अवतारों का उल्लेख है–

दस अवतार देख मत भूलो, ऐसन रूप घनेरे।

दस अवतार देखकर विचलित मत हो जाना, पुजारी बनकर उधर मत घूम जाना। ऐसे रूप अनन्त हैं।

असल पुरुष के हाथ बिकानो, जब ते नैनन हेरे।।

असल पुरुष एक परमतत्त्व परमात्मा है। आत्मपुराण में आया है–

नपुंसकः पुमान् ज्ञेयो यो न वेत्ति हृदि स्थितम्।
पुरुषं स्वप्रकाशं तमानन्दात्मानमव्ययम्।। (आत्मपुराण)

असल पुरुष वह है जो स्वयं प्रकाशस्वरूप, उत्तम आनन्द से युक्त और अव्यक्त है। '**असल पुरुष के हाथ बिकानो**'– क्या कल्पना करके? संत कहते हैं– नहीं, प्रत्यक्ष देखकर – '**जब ते नैनन हेरे**'।

अब तो अजपा जप मन मेरे।

आखिर इस जाप से लाभ क्या?

अबिगत अगम अगोचर अवधू संग फिरत हैं तेरे।

भगवान अबिगत है, मन, बुद्धि से परे हैं, वहाँ तक मन और इन्द्रियों की गति नहीं है। उसकी गति पकड़ में नहीं आती, इसलिए अगम्य है, अगोचर है, जड़ जीवों की पहुँच से परे है। इन्द्रियों और इन्द्रियों की अधिकृत भूमि, त्रिगुणमयी प्रकृति से परे है। जब से आँखों से देख लिया, हम बिक गये। हम बिकने गये, भगवान ही बस में हो गये, ऐसा '**अबिगत अगम, अगोचर अवधू संग फिरत हैं तेरे**'– वह भगवान सदा तुम्हारे साथ घूम रहे हैं। वह भगवान सोते-जागते, उठते-बैठते सदा साथ में हैं।

कह मलूक अब चेत अचेता, काल न आवत नेरे॥

संत मलूक कहते हैं– इस जाप के फलस्वरूप '**काल न आवत नेरे**'– काल तुम्हारा स्पर्श भी नहीं करेगा। '**काल न खाय कलप नहीं व्यापै, देह जरा नहीं छीजै।**'– अरे असावधान व्यक्तियो! अचेतो! चेतो, जग जाओ, सावधान हो जाओ। प्रभु के नामजप का आश्रय ग्रहण करो। इससे लाभ क्या? सर्वोपरि लाभ है– '**काल न आवत नेरे**'– काल तुम्हारा स्पर्श नहीं करेगा– '**जब से पायो नाम पदारथ, काल की अँखियां फूटी।**'

अंड कटाह अमित लय कारी। कालु सदा दुरति क्रम भारी॥

(मानस, 7/93/8)

अनन्त ब्रह्माण्डों को उदरस्थ कर लेने वाला काल बड़ा दुर्दान्त है।

तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल॥ (मानस, 7/94)

कागभुशुण्डि को काल नहीं व्यापता था–

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं॥

(मानस, 7/93/5)

संत मलूकदास जी कहते हैं– '**काल न आवत नेरे**'।

संत कबीरदास जी एक भजन में कहते हैं कि–

दरस दिवाना बावला अलमस्त फकीरा।
एक एकाकी हो रहा अस मत का धीरा।।
दरस दिवाना.....

भजन की अन्तिम कड़ी में कहते हैं कि–

सेवक को सतगुरु मिले कछु रहे न तबाही।
कह कबीर निज घर चलो जहँ काल न जाही।।
दरस दिवाना.....

सेवक हो और सद्गुरु मिल जाए, **'कछु रहे न तबाही'**– कहीं झींखना (झंखना) नहीं पड़ेगा, हवा भर भी अभाव कहीं नहीं खटकेगा।

कह कबीर निज घर चलो जहँ काल न जाई।।

शाम होने पर तो सभी घर चले जाते हैं, वह हमारा घर नहीं। **'जहँ काल न जाई'**– काल तुम्हें गर्दन पकड़कर न घसीटे, बुखार न चढ़े, वह निज घर है, वही सहज स्वरूप है। ठीक यही संत मलूकदास जी कहते हैं–

कह मलूक अब चेत अचेता, काल न आवत नेरे।।

अरे अचेत प्राणी! चेत कर। यह एक ऐसा स्थान है, **'काल न आवत नेरे'**– काल तुम्हारे पास फटकेगा ही नहीं। स्पर्श करना तो दूर, नजदीक से भी नहीं गुजरेगा। मानस कहता है– **'तुम्हहि न ब्यापत काल।'**, मलूक कहता है– **'काल न आवत नेरे'**, संत कबीरदास जी कहते हैं– **'कह कबीर निज घर चलो जहँ काल न जाई।'**– काल वहाँ पहुँच ही नहीं पाता। अकाल पुरुष एक परमात्मा है, उनका दर्शन, स्पर्श और स्थिति।

साधना का पहला चरण नाम है। नाम ही अंत तक जाता है, विदित कराकर ही शान्त होता है। बीच से रूप चला आता है। और जब रूप पकड़ में आ जाता है तो प्रभु अपनी लीलाओं से अवगत कराने लगते हैं – कैसे अजर-अमर हैं?, कैसे कण-कण में व्याप्त हैं?, कैसे योगक्षेम करते हैं?–तो

लीला। और उस लीला को देखते हुए जहाँ से प्रभु रिले (प्रसारण) करते हैं, जहाँ उस लीलाधारी का स्पर्श किया तो धाम, वह स्थिति पा जाता है। हर हालत में भजन एक परमात्मा का, और जागृति एक सद्गुरु से।

कर्ण जब गिर गया, श्रीकृष्ण रोने लगे। श्रीकृष्ण जिन्दगी में कभी नहीं रोये। यशोदा के सामने घड़ियाली आँसू जरुर बहाते रहे लेकिन जरासंध, कंस, महाभारत के महान ताण्डव पर भी श्रीकृष्ण कभी हताश नहीं हुए, अधीर नहीं हुए। वे मुस्कराते रहे, खिलखिलाते रहे, प्रसन्न मुद्रा कभी नहीं गिरी लेकिन कर्ण के गिरते ही श्रीकृष्ण की आँखों में आँसू आ गये। अर्जुन ने कहा– ''भगवन्! प्रबल शत्रु इस सूतपुत्र के ऊपर आप आँसू क्यों बहा रहे हैं?'' तब श्रीकृष्ण बोले– ''अर्जुन! अभी मैं बहा रहा हूँ, थोड़ी देर में तुम भी बहाओगे।''

कर्ण सूतपुत्र था ही नहीं। श्रीकृष्ण जानते थे कि अर्जुन का ज्येष्ठ भ्राता है, लेकिन बात बदलकर बोले– ''अर्जुन! किसी महारथी का वध उचित है लेकिन दानवीर का वध नहीं करना चाहिए। दानवीर का वध अपराध है। आज संसार से एक दानवीर चला गया।'' अर्जुन ने पूछा– ''भगवन्! कितना बड़ा दानवीर था?'' श्रीकृष्ण बोले– ''अभी चलो, बताता हूँ।''

तुरन्त ब्राह्मण का वेश बनाया। उस जमाने में 'ब्राह्मण' शब्द मुँह से निकलते ही संत, जितेन्द्रिय, तपोधन की ओर दृष्टि चली जाती थी, कहना नहीं पड़ता था। हाथ में कमण्डल, माला लिया और वस्त्र बदलकर वे रक्तरंजित समरांगण में कर्ण के पास पहुँचे। श्रीकृष्ण मुस्कुराए, बोले– ''कर्ण! आखिर हम तुम तक पहुँच ही गये।'' कर्ण ने कहा– ''भगवन्! क्या आदेश है?'' श्रीकृष्ण बोले– ''थोड़े से सोने की आवश्यकता थी।'' कर्ण बोला– ''भगवन्! अब मैं इस दशा में हूँ, अन्तिम साँसें गिन रहा हूँ, यहाँ तो कोई प्रबन्ध दिखाई नहीं देता।'' श्रीकृष्ण बोले– ''ठीक है कर्ण, हम अन्यत्र कहीं से ले लेंगे।'' घूम गये वापस, तभी कर्ण बोला– ''ठहरिए भगवन्! मेरे दाँत में सोना है, आप पत्थर से मारकर तोड़ लीजिए, और ले लीजिए।'' श्रीकृष्ण बोले– ''फिर भूल कर रहे हो कर्ण, सन्तों को दाँत तोड़कर सोना निकालना सिखाते हो। अरे, दाँत तोड़कर तो डाकू लोग लिया करते हैं। तुम भूल कर रहे हो कर्ण।''

तब कर्ण बोला– ''महात्मन्! इस रथ में जो वह धनुष टँगा है, जरा सा दे दीजिए।'' श्रीकृष्ण बोले– ''बड़ों को आदेश देते हो, फिर भूल कर रहे हो कर्ण। दान दिया जाता है, लिया नहीं जाता।''

किसी तरीके से उसने सरककर, खिसककर धनुष पकड़ लिया और उसकी मूठ से दाँत में मारा, दाँत टूट गया। कर्ण ने अपना दाँत खुद तोड़ दिया और सोना निकालकर दिया, बोला– ''भगवन्! लीजिए।'' श्रीकृष्ण बोले– ''यह तुम्हारे मुँह में रह चुका है कर्ण!, जूठा है, धोकर दो।'' कर्ण ने तुरन्त पृथ्वी में एक बाण मारा तो जलस्रोत प्रकट हो गया। सोना धोकर भेंट कर दिया। अब श्रीकृष्ण अपने स्वरूप में आ गये, बोले– ''कर्ण! तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बताओ।'' कर्ण बोला– ''भगवन्! मेरी सम्पूर्ण इच्छायें आज पूर्ण हो गयीं। अन्तिम समय में आप मेरी पलकों के सामने हैं, अब मेरे लिए क्या लेना बाकी रह गया जो मैं माँगू।'' श्रीकृष्ण बोले– ''फिर भी कोई इच्छा हो तो बताओ।''

कर्ण बोला– ''प्रभो! ऐसी जगह मेरा दाह-संस्कार हो जहाँ कभी मनुष्य न मरा हो, न जलाया गया हो।'' भगवान ने पता लगाया तो आज से 5200 वर्ष पूर्व एक जगह सींक खड़ी कर दो, इतनी जगह मिली थी जहाँ अभी आदमी मरा नहीं, जीव मरा नहीं, गाड़ा नहीं गया, जलाया नहीं गया। वहाँ सुई खड़ा किया, उसके ऊपर हथेली में आग लिया और दाह-संस्कार किया। भगवान अपने भक्तों को पहचानते हैं, कौन भक्त है। कर्ण भी भक्त ही था, उसकी मृत्यु में उसका यश छिपा हुआ था।

महाभारत युद्ध के पश्चात् जब युधिष्ठिर सगे-संबंधियों को जलांजुली देने लगे तो माता कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा– ''युधिष्ठिर! कर्ण को भी जलांजुली दो।'' युधिष्ठिर बोले– ''माताजी! प्रबल शत्रु सूतपुत्र के ऊपर आँसू बहाकर आप अपने आँसूओं का अपमान क्यों कर रही हैं? आखिर ऐसा क्या रहस्य है?'' तब कुन्ती बोली– ''यह कौन्तेय है, तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता है, सूर्यपुत्र है।'' युधिष्ठिर ने कहा– ''भाई के द्वारा भाई की हत्या करवा डाली आपने? कर्ण मेरे जेष्ठ भ्राता हैं?'' कुन्ती बोली– ''हाँ। कर्ण भी भली प्रकार इस बात

को जानता था।'' युधिष्ठिर बोले– ''आपने बताया क्यों नहीं?'' कुन्ती बोली– ''लोक-लज्जा, सामाजिक प्रतिबन्ध...। और हमने कोई भूल भी नहीं किया। एक मंत्र मिला था, परीक्षार्थ भगवान सूर्य से कर्ण पैदा हो गया। तू धर्म से पैदा हुआ, अर्जुन इन्द्र से पैदा हुआ है। एक बार माद्री ने कहा– बहन, आपको बच्चे कैसे होते हैं? मैंने कहा– मन्त्र से। माद्री बोली– हमें नहीं मिलेगा? मैंने कहा– तू भी ले ले। और मन्त्र दे दिया। तब माद्री ने पाण्डु से पूछा– मैं किसका स्मरण करूँ? महाराज पाण्डु ने कहा– अश्विनीकुमारों का चिन्तन करो। अश्विनीकुमार दो थे, तो नकुल और सहदेव हुए।''

युधिष्ठिर ने कहा– ''इतना बड़ा सच छिपा लिया! आपके एक झूठ ने महाभारत करवा दिया। यदि कर्ण पाण्डवों की तरफ होता तो दुर्योधन की हिम्मत नहीं थी कि पाण्डवों से छेड़छाड़ करे। आपने महाभारत करवा दिया। जाइए, मैं श्राप देता हूँ, आज से औरतों के हृदय में कोई बात नहीं छिपेगी।'' पहले स्त्रियाँ बात छिपाने में बहुत माहिर थीं लेकिन जब से युधिष्ठिर का श्राप मिल गया तब से बहुत चपल हो गयीं। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण रोये नहीं थे, एक भक्त को श्रद्धांजली दे रहे थे, भक्त के लिए वह उनके प्रेमाश्रु थे।

जहाँ भगत मेरो पग धरे, तहाँ धरूँ मैं हाथ।
पाछे लागा सदा रहूँ, कबहूँ न छाड़ूँ साथ॥

मैं सदा पीछे लगा रहता हूँ, कभी साथ नहीं छोड़ता हूँ। श्रीकृष्ण एक योगेश्वर सद्गुरु थे। 'गुरु करे जाने कै, पानी पीये छान कै।' गुरु भी एक स्थिति है।

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

(मानस, 7/68/7)

विशुद्ध संत उन्हें मिलते है जिस पर प्रभु कृपा करके एक निगाह देख लें। लेकिन प्रभु कृपा ही कब करेंगे? गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं–

मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥

(मानस, 1/199/6)

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय॥

अवधू वो ततु रावल राता

अर्जुन ने पूछा– जिस यज्ञ का परिणाम अमृत का भोजन और ब्रह्म में प्रवेश है उस ज्ञान को मैं कैसे प्राप्त करूँ?, कोई कैसे प्राप्त करे? तो भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (गीता, 4/34)

किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष के पास जाकर निष्कपट भाव से सेवा और प्रश्न करके तुम उस ज्ञान को प्राप्त करो। अर्जुन! वे तत्त्व के ज्ञाता तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश करेंगे। उनसे जान लेने के पश्चात् तुम्हें जीवन में कभी सन्देह नहीं होगा कि पूर्व से रास्ता चलें या पश्चिम वाली गली से चलें।

उन्होंने उपदेश कर दिया और तुमने सुन लिया, क्या उतने से काम चल जायेगा? तो कहते हैं– नहीं,

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥ (गीता, 4/38)

अर्जुन! ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह सृष्टि में कुछ भी नहीं है, किन्तु उसको **'तत्स्वयं'**– तू खुद, **'योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति'**– योग के आरम्भ में नहीं, मध्य में नहीं, योग की परिपक्व अवस्था-काल में हृदय-देश में उसका साक्षात्कार करोगे, योग की परिपक्व अवस्था-काल में अपने हृदय-देश में प्रत्यक्ष देखोगे।

अर्जुन! ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला कुछ भी नहीं। ज्ञान वाणी से कहने में नहीं आता। वह एक प्रत्यक्ष दर्शन है। साक्षात्कार के साथ मिलने वाली जानकारी का नाम ज्ञान है। ज्ञान माने साक्षात्कार के साथ मिलने वाली अनुभूति।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। (गीता, 13/11)

अर्जुन! आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलना, उनके संरक्षण में चलते हुए परम तत्त्व परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन, दर्शन के साथ मिलने वाली अनुभूति ज्ञान है। और सृष्टि में जो कुछ है, अज्ञान है।

पहले तो हृदय से आत्मा जागृत हो। हृदय में जो भगवान प्रसुप्त है, वह जागृत हों। किसी तत्त्वदर्शी के शरण-सान्निध्य से जो आत्मा हृदय में प्रसुप्त है वह जागृत हो जाये, आत्मा से अभिन्न होकर भगवान स्वयं बोलने, बताने लगें। **'सब घट मेरा साईंयाँ'**– भगवान हृदय में बैठे हैं, वह जागृत हो जायं, बोले, बताये, मागदर्शन करने लगे, ऊँगली पकड़कर ले चले। उनके निर्देशन को समझो और चलते जाओ, यह है ज्ञान की जागृति।

'अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्'– आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलना, यह ज्ञान की निम्नतम सीमा है। यह ज्ञान की जागृति है। उन्हीं के संरक्षण में चलते हुए, उनके निर्देशन में चलते हुए परम तत्त्व परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन, दर्शन के साथ मिलने वाली जानकारी ज्ञान है। और सृष्टि में जो कुछ है, अज्ञान है।

गीता अध्याय 18 में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– तत्त्व को चाहने वाले पुरुष को चाहिए, एकान्त देश का सेवन करे और योगविधि को हृदय में धारण करके चित्त को ध्यान में लगावे। अभ्यास इतना सूक्ष्म हो जाये कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, विजातीय प्रवृत्तियाँ सर्वथा शान्त हो जायें; धारणा, ध्यान, समाधि, विवेक, वैराग्य, शम, दम – ये परिपक्व हो जायें, उस वक्त वह ब्रह्म को जानने के लिए योग्य होता है। भक्ति अपनी पराकाष्ठा पर है, भक्ति अपना परिणाम देने की स्थिति में है, इस योग्यता का नाम पराभक्ति है। पराभक्ति के द्वारा वह तत्त्व को जानता है। भला वह तत्त्व कैसा है? वह मुझको जानता है। मैं अजर, अमर, शाश्वत, ज्योतिर्मय जिन अलौकिक गुणधर्मों वाला हूँ उसे जानता है, और मुझे जानकर तत्क्षण वह मुझमें स्थित

हो जाता है। इस क्षण भगवान का दर्शन, दूसरे ही क्षण भगवत्-स्वरूप में स्थित हो जाता है। वह ब्रह्म को जानने के योग्य होता है, तत्त्व को जानता है। तत्त्व है क्या? मुझको जानता है। मुझे जानकर मुझमें ही समाहित हो जाता है। सेवक खो जाता है, भगवान ही शेष बच रहता है। वह तत्त्वदर्शी है। परम तत्त्व एक परमात्मा है।

गीता प्रत्यक्ष दर्शन कराती है और स्थिति देती है। प्रत्येक महापुरुष ने यही पाया है, चाहे पढ़े-लिखे रहे हो चाहे अनपढ़। इसी आशय का संत कबीरदासजी का एक भजन है–

अवधू वो तत्तु रावल राता,
नाचै बाजन बाजु बराता।।

मौर के माथे दुलहा दीन्हा, अकथ जोरि कहाता।
मँड़ये के चारन समधी दीन्हा, पुत्र ब्याहिल माता।।
अवधू वो तत्तु रावल राता।

दुलहिन लीपि चौक बैठारी, निरभय पद परकासा।
भाते उलटि बरातिहि खायो, भली बनी कुशलाता।।
अवधू वो तत्तु रावल राता।

पाणीग्रहण भयो भौ मंडन, सुषमनि सुरति समानी।
कहत कबीर सुनो हो संतो, बूझो पण्डित ज्ञानी।।
अवधू वो तत्तु रावल राता।

इसका अर्थ है कुछ? आप लोगों की निगाह में कोई अर्थ है कि नहीं? कुछ नहीं! एक बकवाज, ढकोसला दिखाई पड़ता है। लेकिन ऐसा नहीं है, यह आध्यात्मिक साधना है।

कबीरदासजी एक महापुरुष थे। महापुरुष को कहाँ फुर्सत कि लोक रिझाने के लिए उटांग-पटांग रचता फिरे। कबीरदासजी ने रोजमर्रा की जिन्दगी, व्यवहारिक जीवन में रात-दिन जो घटित हो रहा है, इसी प्रणाली को उदाहरण बनाकर योगिक प्रक्रिया को, वैदिक तथ्य को प्रस्तुत कर दिया। अधिकारी तो

समझ ही लेंगे; और अनाधिकारी विनोदवश उसको जरुर छूयेंगे, गपोड़ा ही समझकर आकर्षित जरूर होंगे, पढ़ते-सुनते कहीं महापुरुष मिल गया तो अर्थ भी समझ जायेंगे। उन्होंने एक आकर्षण पैदा कर दिया–

अवधू वो तत्तु रावल राता।
नाचै बाजन बाजु बराता।।

रामचरितमानस में तुलसीदासजी कहते हैं–

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।

(मानस, 7/115/3)

माया भी और भक्ति भी दोनों नारी वर्ग हैं।

पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी।।

(मानस, 7/115/4)

भगवान को भक्ति प्रिय है। माया नाचने वाली नटनी मात्र है लेकिन है भगवान की ही। भगवान को दोनों प्रिय है, दोनों भगवान की ही है। ये दो वधुएं हैं। जो इस माया से अतीत है तो अवधू। माया से भी और भक्ति की भी चरमोत्कर्ष अवस्था को जो पार कर गया हो वह अ-वधू– अवधू। अवधू, इससे जो अतीत अवस्था में आया हो। संत कबीर अपने इस अवस्थावाले संतों से समागम करते हुए आगे कहते हैं–

अवधू वो ततु रावल राता।

पाँच तत्त्व....

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।

(मानस, 4/10/4)

तत्त्व माने सार होता है। लोग कहते हैं– इसमें कोई तत्त्व नहीं है। मतलब इसमें कोई सार नहीं है। इसमें अब कोई रस नहीं है, अब आगे वार्ता बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। तत्त्व माने सार होता है। पाँच तत्त्व है, पच्चीस प्रकृति है जिससे पूरे संसार की संरचना हुई है। यह पाँचों तत्त्व भी जिससे संचालित है वह परम तत्त्व एक परमात्मा है। कबीरदासजी कहते हैं– वह परम

तत्त्व है। गीता का परम तत्त्व जो अभी हमने बताया था। **'अवधू वो ततु'**– वो माने वह तत्त्व, वह परम तत्त्व। उस परम तत्त्व में जो अनुरक्त है, रावल माने राजा होता है, वह शाहों का शाह है, राजाओं का राजा है, गुरुओं का गुरु है, वही सद्गुरु है। तो– **'वो ततु'**–वो माने वह तत्त्व। परमात्मा ही परम तत्त्व है। वह ब्रह्म को जानता है। ब्रह्म है क्या?, तो मुझको जानता है कि आप हैं कैसे। वह मुझे जानता है, मुझे जानकर मुझमें ही स्थित हो जाता है।

अवधू वो ततु रावल राता।

इधर राव सा, भूमिहार बाबू साहब राय साहब, राजस्थान में रावल...। रावल माने सर्वोपरि नरेश, शाहों के शाह, रावों के राव। जो संतों में सर्वोपरि है, उसको रावल कहते हैं। वही सर्वोपरि संत है, सर्वोपरि राजधानी है। ये दुनिया वाली राजधानियाँ तो नष्ट हो जाती हैं, वह कभी नष्ट नहीं होता। सदा निवास करने वाला सम्राट होता है, राव होता है। **'वो ततु रावल राता'**– राता माने अनुरक्त है, सदैव उसमें रमा हुआ रहता है। वह तत्त्व कैसा है?

'नाचै बाजन बाज बराता।'

उस तत्त्व में प्रवेश के लिए, उस तत्त्व पर्यन्त दूरी तय करने के लिए हमें संयम, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि– यह बारात सजाकर चलना होता है। और इससे पूर्व काम, क्रोध, अनन्त इच्छायें, अनन्त वासनायें, अनन्त तृष्णायें... यह बाजा बजता ही रहता है तो– **'नाचै बाजन'**– ये जो बाजे सबके मस्तिष्क में, पूरी सृष्टि में बजते रहते हैं। जब उस तत्त्व में कोई भक्त अनुरक्त हो जाता है तो यह बाजे फिर नाचने लगते हैं, किनारे हो जाते हैं। **'बाज बराता'**– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरशरणागति – यही बारात लेकर गया था, यह बजने लगता है। यह संयम सध जाता है, भली प्रकार परिपालन होने लगता है।

'नाचै बाजन'– पहले जो धुनि प्रसारित होती थी वह किनारे हो गया, उनका वश ही नहीं चलता, वह नाचने लगते हैं। और **'बाज बराता'**– जो

बारात हम लेकर गये थे, वह बजने लगता है।

अवधू वो ततु रावल राता।

मौर के माथे दुलहा दीन्हा, अकथा जोरि कहाता।

मँड़ये के चारन समधी दीन्हा, पुत्र ब्याहिल माता।।

और मस्तिष्क में शुभाशुभ विचारों का जो मौर बँधा था, **'मौरके माथे दूलह दीन्हो'....**

चाहे आप स्त्री हो या पुरुष, शरीर कभी भजन नहीं करता। शरीर तो एक मकान है।

'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।' (मानस, 7/42/8)

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।

(मानस, 7/42/7)

बड़े भाग्य से मानव तन मिला है। यह देवताओं को भी दुर्लभ है। देवता भी इससे आशावान हैं कि भगवन्! देवलोक से एक दिन तो गिरना ही पड़ेगा। प्रभो! हम गिरें तो हमें दुर्लभ मानव-तन मिले। वह भी इससे आशावान हैं। इन्द्र एक बार गिरा तो गिरगिट हो गया, एक बार गिरा तो अजगर हो गया, भेड़ा हो गया। आयु के दिन पूरा करके देवताओं को भी गिरना पड़ता है। तो भगवन्! भेड़ा और गिरगिट न होना पड़े, दुर्लभ मानव तन मिले। नवीन साधना करके देवता मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते। उसके लिए तो मानव तन से ही होकर गुजरना पड़ता है।

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

धाम माने निवास-स्थान, घर होता है। तो भला मकान कौन-सा भजन करेगा? इसलिए **'मौर के माथे'**– शुभाशुभ विकारों का मौर जो मस्तिष्क में था। तो स्त्री हो या पुरुष, इष्टोन्मुखी लगन जो जागृत हो जाती है वही भजन करवा लेती है। लौरूपी लड़की। जब लौ लग ही गयी तो मस्तिष्क में भले-बुरे संस्कारों की जो रील बनी हुई है, इसके सिर पर **'दूलहा दीन्हा'**– अपने आराध्यदेव को इनके ऊपर रख दिया। जिनका पुजारी है, उन्हें रख दिया।

भगवान को वहाँ स्थापित कर दिया, वही दुल्हा है। माता मीरा कहती हैं–

औरों के पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजें पाती।
मेरे पिया मोरे हिय बसत हैं, ना कहूँ आती न जाती।।

मौर के माथे दूलहा दीन्हा, अकथा जोरि कहाता।

भले-बुरे संस्कारों का, विचारों का संग्रह का जो मौर बँधा था, उनको दबा दिया, उनके ऊपर भगवान्–आराध्यदेव–प्रेमास्पद प्रभु को स्थापित कर दिया।

मौर के माथे दूलहा दीन्हा, अकथा जोरि कहाता।

अकथनीय जोड़ी कहाने लगी। उधर प्रेमास्पद प्रभु और इधर हमारे मन की लौ लग गयी– '**अकथा जोरि कहाता**'।

मड़ये के चारन समधी दीन्हा, पुत्र विवाहल माता।।

मड़वा (मण्डप) होता है न, मड़वा में पण्डित बैठकर पढ़ते हैं– '**ॐ गणानां त्वा गणपतिँ् हवामहे। प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ् हवामहे। निधिनां त्वा निधिपतिँ् हवामहे।**.....' अब गाँठ जोड़ दो... 'अग्नि स्वाहा' बोलता है न, वह उच्चारण खत्म, उच्चारण की जगह पर समधी दे दिया।

वास्तव में मड़वे में चार थूनी होती हैं– मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार– इन चारों ने जब स्थायित्व ले लिया, माड़ो गड़ गया। मड़वे के अन्दर जो उच्चारण होता है, उच्चारण बन्द। वहाँ समाधि.... सम+आदि= समाधि। आदि तत्त्व परमात्मा में समत्व दिला दे, उसका नाम समाधि है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं–

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।। (योगदर्शन, 3/2)

लक्ष्यमात्र का आभास रह जाय, चित्त का निज स्वरूप शून्य-सा हो जाय, और जिस प्रभु का चरण देखता है, चरण मात्र रह जाये, देखने वाले चित्त का स्वरूप शून्य हो जाये, इसी का नाम समाधि है। जब मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार चारों ने स्थायित्व ले लिया तो माड़ो गड़ गया। उसमें पहले

जो उच्चारण होता था, पहले तो– ओम्-ओम्-ओम् उच्चारण था, वह भी शान्त हो गया। समाधि की अवस्था आई तो उच्चारण करने वाला चित्त भी सम, आदि तत्त्व परमात्मा में समाहित हो गया।

'मड़ये के चारन समधी दीन्हा'– उच्चारण के स्थान पर समाधि दे दिया, और जो साधक था, मन – **'पुत्र ब्याहिल माता'**। भक्तिरूपी माता। शरीर का जन्म माताओं से होता है, स्वरूप के जन्म में भक्ति ही माता है। विभक्ति माने विभाजन, अलगौजी। भक्ति माने भगवान से सुरत का जुड़ना। भक्ति की चरमोत्कृष्ट अवस्था में भगवान प्रकट हो गये। प्रकट हुए तो भक्ति के द्वारा। समाधि की परिपक्व अवस्था में जहाँ भगवान का स्वरूप प्रकट हुआ, भक्ति भगवान में समाहित हो गयी तो **'पुत्र ब्याहिल माता'**– भगवान ने उस भक्ति को अपने में समाहित कर लिया। भक्ति को समाहित क्या किया, भक्ति जिस घट में थी, भक्ति जिस भक्त में थी, उस भक्त को ही अपने में समाहित कर लिया।

दुलहिन लीपि चौक बैठारी, निरभय पद परकासा।
भाते उलटि बरातिहि खायो, भली बनी कुशलाता॥
अवधू वो तत्तु रावल राता।

'दुलहिनि लीपि चौक बैठाये'

'लीपि चौक'– पहले तो मुजैक, टाईल था ही नहीं। बहुत शुद्ध सफाई का मतलब था– लिपाई हो गयी। अब चित्तवृत्ति एकदम शुद्ध है। न भले उद्वेग उठते है, न बुरे उद्वेग उठते हैं। चित्त पारदर्शी है, मतलब लिपाई हो गयी, **'लीपि चौक बैठाये'**।

(दुलहिनि) चित्तवृत्ति में न शुभ संकल्प उठते हैं, न अशुभ। **'दुलहिनि लीपि चौक बैठाये'**– मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार – चारों शान्त, सम, स्थिर हैं। न मन संकल्प करता है, न चित्त चिन्तन करता है, न बुद्धि (भला-बुरा किसी प्रकार का निश्चय करने वाली प्रशक्ति का नाम बुद्धि है) कोई निर्णय करती है, और न अहंकार ही है।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(मानस, 3/10/21)

अहंकार है तो एक अहंकार बचा कि भगवान मेरे स्वामी और मैं सेवक। जब समाहित कर लिया तो अहंकार भी कौन करे?, और किसका करे? वह भी शान्त हो गया तो– **'दुलहिनि'–** भगवान का सुमिरन करने वाली चित्तवृत्ति, वह भी **'लीपि चौक'**– चित्त का धरातल एकदम सम, शान्त हो गया, उसमें सफाई में कोई कमी नहीं रह गयी।

दुलहिनि लीपि चौक बैठाये, निरभय पद परकासा।

एकदम निर्भय! जहाँ भय है ही नहीं, अभय पद प्रकाशित हो गया और भजन पूर्ण हुआ। शरीर का भोजन रोटी-दाल-सब्जी है, लेकिन आत्मा का भोजन भजन है। जब चित्त शान्त प्रवाहित हो गया, लीपि चौक बैठा ही दिया, विकार रह ही नहीं गया, निर्भय पद प्रकाशित हो गया, **'निरभय पद परकासा'**।

तहाँ भजन पूर्ण हुआ तो भजनरूपी भोजन। इसको पूर्वी भाषा में भात कहते हैं, तो,

भातहि उलटि बरातहिं खायो, भली बनी कुशलाता॥

भात (भजन) ने उलटकर बरातियों को खा लिया। भजन जब पूर्ण हो गया, भजन की पूर्तिकाल में सम्पूर्ण दैवी सम्पद् जो बाराती थे, भगवान में समाहित हो गये। भजन की परिपक्व अवस्थाकाल में सम्पूर्ण साधना-पद्धति सिमटकर भगवान में समाहित हो गयी।

'शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।' (गीता, 12/17)

'अशुभ'– वे जो प्रकृति में भटकाते हैं। **'शुभ'**– वे जो परमात्मा की स्थिति दिलाते हैं। जब **'भली बनी कुशलाता'**– बन ही गयी तो भजन किसका करें?, आगे है कौन?, साधना के द्वारा किसे ढूँढ़े? तो– **'हरिजन भजन भेद से न्यारा'**– भजन और भेद से अलग हो गया। तो भजन की परिपक्व अवस्थाकाल में जो बारात लेकर आये थे, वह भी समाहित हो गये।

भातहि उलटि बरातहिं खायो, भली बनी कुशलाता।।

अब **'भजन हमारा हरि करें, हम पायो विश्राम।'**, वह पेंशनीयर हो गये।

पाणी ग्रहण भये भव मंडौ, सुषुमनि सुरति समाता।
कहै कबीर सुनो हो संतो, बूझो पंडित ज्ञाता।।
अवधू वो तत्तु रावल राता।

'पाणी ग्रहण भये भव मंडौ'

पाणी माने हम सोचे पानी पकड़ते होंगे। पानी उलीचत है न, हम सोचे वही पाणीग्रहण होता है। बहुत दिनों बाद हम समझ पाये पाणी माने हाथ, पाणीग्रहण माने हाथ मिलाओ। भगवान साधक की भली प्रकार परवरिश करने लगते हैं। जब भगवान ने ही हाथ पकड़ लिया तो अब तक जो भव हमें डुबाने वाला था, वह भव रह ही नहीं गया, प्रकृति पुरुषोत्तम में परिवर्तित हो गयी। **'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्'** (ईशावास्योपनिषद्, 1)– सर्वत्र ईश्वर का वास। किंचित् हवा भर भी जगत रह ही नहीं गया तो डूबकर मरोगे कहाँ! जब कहीं गड्ढा हो तब तो मरोगे। जो भव था, वह मण्डन हो गया, प्रकृति पुरुषोत्तम में विलीन हो गयी।

बिना गोपाल ठौर नहिं कतहूँ, नरक जात धौ काहीं?

(कबीर, शब्द 42)

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।

(मानस, 2/130/7)

न स्वर्ग, स्वर्ग के रूप में रह गया, न नरक नरक के रूप में रह गया, न बैकुण्ठ बैकुण्ठ के रूप में रह गया जिसकी हम चाह करें। जहाँ भगवान ने हाथ पकड़कर अपने में समाहित कर लिया तब जो भव था वह परमात्मा के स्वरूप में परिवर्तित हो गया, प्रकृति पुरुषोत्तम के रूप में परिवर्तित हो गयी।

पाणी ग्रहण भये भव मंडौ, सुषुमनि सुरति समाता।

फिर साधक का मन सुखपूर्वक समाहित रहेगा, एकरस रहने वाली रहनी मिल गयी। **'सुषुमनि सुरति समाता'**– मन सुखपूर्वक सदा एकरस रहने वाली वृत्ति में समाहित हो गया।

कहै कबीर सुनो हो संतो, बूझो पंडित ज्ञाता॥

संत कबीरदासजी कहते हैं– संतो! सुनो और समझो। **'बूझो पंडित ज्ञाता'**– कोई पण्डित हो, ज्ञाता हो तो बूझो। पण्डित और ज्ञानी बूझो। सब पण्डित भी नहीं समझ पायेंगे। बूझो माने बूझतानि, बूझ गइनि, बूझल बानी.... बूझो माने समझो। तो–

चतुराई चूल्हे पड़ी, घूरे पड़ा अचार।
तुलसी राम भजन बिन, चारों बरन चमार॥

पण्डित एक स्थिति विशेष है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण पण्डित की परिभाषा देते हुए कहते हैं– कर्म माने आराधना। इस कर्म को किये बिना न कोई पाया है, न कोई प्राप्त कर सकेगा। कर्म अनिवार्य है। लेकिन कर्म करते-करते,

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ (गीता, 4/19)

पण्डित किसे कहते हैं? लेशमात्र भी त्रुटि न रखकर सम्पूर्णता के आरम्भ की हुई क्रिया, कर्म क्रमशः उत्कर्ष होते-होते इतना उन्नत हो गया कि **'कामसङ्कल्पवर्जिताः'**– काम माने कामनायें, इच्छायें.... इनसे ऊपर उठ गया तो **'संकल्पवर्जिताः'**- संकल्प का ही दूसरा नाम मन है। मन का ही दूसरा नाम संकल्प है। वह संकल्प से ऊपर उठ गया। यह मन की विजेतावस्था है, मन की निरोधावस्था है।

कर्म कोई ऐसी वस्तु है जो कामना और संकल्प से ऊपर उठा देता है। जहाँ कामना और संकल्प से ऊपर उठा, **'ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं'**– जिसे जानना चाहता था, जिसके लिए कर्म में प्रवृत्त था, उसकी जानकारी हो जाती है, वह प्रत्यक्ष हो जाता है। उस ज्ञानाग्नि में कर्म सदा के लिए जल जाते

हैं–'**दग्धकर्माणं**', '**तमाहुः पण्डितं बुधाः**'– उसी को बोधस्वरूप महापुरुषों ने पण्डित कहकर सम्बोधित किया है। पण्डित एक स्थिति है। प्रत्यक्ष दर्शन के साथ मिलने वाली जानकारी जिसे है, वह पण्डित है, पूर्णज्ञाता है। इन पण्डितों की रहनी कैसी होती है?

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (गीता, 5/18)

विद्याविनययुक्त ब्राह्मण में और चाण्डाल में, कुत्ता, हाथी और गाय में जो पण्डित हैं वह समान दृष्टि वाले होते हैं। उनकी दृष्टि में विद्याविनययुक्त ब्राह्मण न कोई विशेषता रखता है, न चाण्डाल कोई हीनता रखता है क्योंकि उन महापुरुष की दृष्टि चमड़ी पर नहीं पड़ती। उनकी दृष्टि सीधी आत्मा पर पड़ती है, आपकी वृत्ति पर पड़ती है। वह जानते हैं कि विद्याविनययुक्त पुरुष जरा लक्ष्य के करीब है, और बिल्कुल चाण्डाल जो एक सियार पीठ पर लादकर घूम रहा है, लक्ष्य से थोड़ा दूर खड़ा है, है उसी पथ का पथिक। न गाय धर्म है, न कुत्ता अधर्म है, न विशालकाय होने से हाथी ही कोई विशेषता रखता है। '**पण्डिताः समदर्शिनः**'– जो पण्डित हैं, वे समदृष्टिवाले होते हैं। एक स्थान पर कहते हैं–

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥ (गीता, 2/45)

अर्जुन! वेद तीनों गुणों तक ही प्रकाश करते हैं। इसके आगे का हाल वे नहीं जानते। '**निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन**'– इसलिए वेदों की अधिकृत भूमि तीनों गुणों से तू आगे बढ़। '**निर्द्वन्द्वो**'– रागद्वेषादि से अलग रहकर, योगक्षेम को न चाहता हुआ आत्मपरायण हो, इस विधि से आगे बढ़।

मैं ही आगे बढ़ूँ या और भी कोई आगे बढ़ा है?, आगे बढ़ूँगा तो क्या प्राप्त कर लूँगा?–इस पर भगवान कहते हैं– जो आगे बढ़ते हैं, वह ब्रह्म को जानते हैं। जो ब्रह्म को जानते हैं, वह ब्राह्मण होते हैं। तू भी आगे बढ़, ब्रह्म को जान, ब्राह्मण बन।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥ (गीता, 2/46)

सब ओर से परिपूर्ण स्वच्छ जलाशय के प्राप्त हो जाने पर गड्ढा इत्यादि क्षुद्र जलाशय से मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी प्रकार ब्रह्म को जानने वाले ब्राह्मण का वेदों से उतना ही प्रयोजन रहता है। वेदों से आगे बढ़ता है, वह ब्रह्म को जानता है। जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्राह्मण होता है। तू भी वेदों से आगे बढ़, ब्रह्म को जान, ब्राह्मण बन।

अर्जुन क्षत्रिय श्रेणी का साधक था, भगवान कहते हैं– आगे बढ़, ब्रह्म को जान, ब्राह्मण बन। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र साधना की क्रमोन्नत श्रेणियाँ हैं, एक स्थिति विशेष है। यह कोई भी प्राप्त कर सकता है।

हम जंगल में फँसे हैं, पानी कहीं है ही नहीं तो क्षुद्र जलाशय, गड़ही का पानी पीना पड़ेगा। सौभाग्य से बगल से गंगा की धारा निकल गयी तो क्या गड़ही का पानी पिओगे! कभी-कभी बच्चे शौच कर लेंगे, नहा लेंगे, कभी भैंस नहला लोगे, सनई धो लोगे, और क्या करोगे! इसलिए–

कहै कबीर सुनो हो संतो, बूझो पंडित ज्ञाता॥

सब तो समझ भी नहीं पायेंगे। इस पथ में जो अभ्यास के द्वारा गुजरेंगे, अवश्य समझेंगे। **'अवधू वो ततु रावल राता'–** उस तत्त्व में जो अनुरक्त है, वही सच्चा योगी है, भक्त है, रावल है, रावल माने शाहों का शाह है, राजाओं का राजा है। उसका राज्य कभी नष्ट नहीं होगा।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय॥

अवधू अचरज भौ इक भारी

सृष्टि में परिवर्तन होता ही रहता है। एक समय ऐसा परिवर्तन आया कि शिक्षा पर प्रतिबन्ध...। इतिहास महाभारत... उस पर भी प्रतिबन्ध। धर्मशास्त्र गीता... उस पर भी प्रतिबन्ध। और फिर सामाजिक व्यवस्था को ही लोगों ने धर्म मानना शुरु कर दिया। सामाजिक व्यवस्थाएँ जैसे इस संविधान के कागजात हैं, ऐसा ही संविधान स्टेट पीरियड में चलता था जिनका नाम था स्मृतियाँ।

आरम्भ में तो ये महाराजा मनु के नाम पर लिखी गयीं। लेखक मनु थे लेकिन वह महाराजा थे, ऋषि नहीं थे। वह श्रुतज्ञान था। कागज नहीं था, कलम नहीं थी, लेखक कहाँ से हो गये? वह लेखक नहीं थे। श्रवण करो और स्मृति में रखो, इसलिए महाराजा मनु से 'गीता' को स्मृति का नाम दिया था। और फिर तीन सौ करीब स्मृतियाँ प्रकाश में आयीं। बीस तो ऐसी थीं जो हर स्टेट में पढ़ाई जाती थीं, वह कानून की किताब, आचार्य संहिता, न्याय विभाग के काम की थीं। और इन पर भी प्रतिबन्ध था कि उनको सामान्य व्यक्ति नहीं देख सकता था। यह गोपनीय रखकर चलाई हुई एक व्यवस्था थी। ऐसी परिस्थिति में खाना धर्म, पीना धर्म, कपड़ा पहनना धर्म, जाति-पाति धर्म, छुआछूत धर्म हो गये।

सब महाराजा मनु से जायमान हैं। कहते हैं कि मनु महाराजा ने वर्ण बना दिया। कोई बाप अपने एक बेटे को एकदम अधम, अभागा, नीच, दूसरे को परम पवित्र, तीसरे को आधा, चौथे को चौथाई कह सकता है क्या? यदि लड़का पागल भी है तो उसकी सेवायें बढ़ जाती हैं।

उस समय पर सब एक ही थे। भगवान कहते हैं– सब मेरे विशुद्ध अंश हैं। मनु महाराज को विरासत में जो प्रथम शास्त्र मिला था, वह आदिशास्त्र गीता थी। भगवान कहते हैं– मैं ही परम चेतन परमात्मा बीज रूप से पिता,

प्रकृति गर्भ धारण करने वाली माता है। सब उतने ही पवित्र जितना भगवान। मूलतः सब जिस धातु से बने वह बस इतना ही है। बाद में तो गाँव के नाम से जातियाँ बनीं, कोई परिवार में सुयोग्य व्यक्ति निकला तो उसके नाम से भी कबीले का सम्बोधन होने लगा, और कुछ गढ़कर थोपी गयीं।

संसार भर में राजा-महाराजा बराबर आपस में लड़ा करते थे। भारत में तो एक नियम चल रहा था, चाणक्य के उपदेशों में था कि हर राजा का पड़ोसी राजा शत्रु है, उसके बाद वाला मित्र है, तो बाद वाले से हाथ मिलाओ और शत्रु को कुचल डालो। शत्रु को भी तो यही कहा गया था– पड़ोसी शत्रु, बाद वाला मित्र। हर स्टेट से स्टेट की सीमायें तो मिली हैं, जीवन लड़ते ही बीता। कोई तो अवश्य हारता था। हार हुई तो भागा। और जो नरेश भाग गये, हार गये उनकी भक्त प्रजा ने जहाँ चूँ-चूँ किया तो बेगारी लेना शुरु कर दिया, इसी का नाम शूद्र है, और कहीं कुछ नहीं। शास्त्र के अनुसार, धार्मिक प्रमाणों के अनुसार वह बिल्कुल उतना ही पावन है जितने सब, जितना होना चाहिए।

ऐसी परिस्थिति में धर्म महापुरुषों की चिन्तनधारा में विद्यमान था। भगवान महावीर, बुद्ध, नानक और आसपास के सब गुरुघराने, सूफी संत, कबीर, तुलसी, सूर और बहुत से महापुरुष, केरल के नारायण स्वामी, चैतन्य महाप्रभु, असम के शंकरदेव, गुजरात के नरसी भक्त, महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर, चारों भाई-बहन, संत तुकाराम, एकनाथ, विवेकानन्द इत्यादि... इन जितनों का नाम हम गिना रहे हैं, सबको जातिच्युत किया, सबको देशनिकाला दिया, कुछ को मृत्युदण्ड भी दिया। दयानन्द सरस्वती को छः बार जहर दिया। यह सब कोई गये-गुजरे नहीं थे, अधिकांश ब्राह्मण ही हैं। सब सच बोल रहे थे, फिर भी वेश्या लगा दिया... बुद्ध इत्यादि के पीछे.... बदनाम करने के लिए कुटिया के पीछे लाशें गाड़ दी गयीं जिससे कि बदनाम हो जायँ, जनता इनका साथ छोड़ दे। सारे षड्यन्त्रों के बाबजूद उनकी गरिमा में कोई फर्क नहीं आया। कबीर के पीछे भी वेश्या लगाई गयी थी, बदनाम भी किये। तुलसी की रामायण यमुना में फेंक दिया, फिर वेदों के नीचे रखा, फिर डाकू पीछे पड़े किन्तु

उनकी चिन्तन-पद्धति में कोई फर्क नहीं आया। उनके संरक्षण में यह चिन्तन-पद्धति भली प्रकार सुरक्षित चल रही थी और आज भी प्रत्येक व्यक्ति के कण्ठ पर इन्हीं विभूतियों के पदों का गायन है, यह धर्म जानते थे। लेकिन सभी महापुरुष जहाँ से बोलते थे वह था आदिशास्त्र गीता का संदेश। ईश्वर एक है। इन्द्रिय-संयम के साथ चिन्तन में लगो, वह बात करते हैं, वरदहस्त रखते हैं, उनका दर्शन सुलभ है, स्पर्श सुलभ है, प्रवेश सुलभ है।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥ (गीता, 11/54)

अर्जुन! मैं न तो वेद से, न यज्ञ से, न तप से ही प्राप्त होता हूँ। **'भक्त्या त्वनन्यया'**– जो अन्य किसी को न भजते हुए केवल मुझे भजता है, ऐसे समर्पित भक्त के लिए मैं दर्शन, स्पर्श और प्रवेश के लिए भी सुलभ हूँ। गीता मानव दर्शन है।

'दुर्लभ मानव तन को पाकर मेरा भजन कर'– यह सब महापुरुषों ने सम्पूर्ण भाषाओं में.... कोई गुरुमुखी में बोला, कोई मराठी में बोला, कोई तेलगू, कोई असमिया, कोई गुजराती इत्यादि भाषाओं में बोला लेकिन जो तथ्य उद्घाटित हुए वह सब आदिशास्त्र गीता के हैं, परमात्मा के श्रीमुख का सीधा प्रसारण है। हजरत मुहम्मद भी बोले तो एक ईश्वर। सृष्टि में कोई भी एक ईश्वर कहता है तो हजारों वर्ष पूर्व प्रसारित गीता का ही संदेश है। ईश्वर एक है, किञ्चित् भी किसी का अस्तित्व नहीं है। और जो कुछ है नश्वर है। स्वयं सृष्टिनिर्माता विधाता भी काल पाकर अपने लोकसमेत मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यह दिति-अदिति की सन्तानें – देव-दानव, मानव पुनरावर्ती स्वभाववाले हैं। एक आत्मा ही सत्य है। कदाचित् हजारों-हजारों वर्ष पश्चात् कोई यह बात कहता है तो वह संत है। यह सतपुरुष की वाणी है लेकिन सन्देश गीता के ही हैं। भगवान ने जो तब कहा था, आज भी किसी से बतायेगा तो वही कहेगा। भगवान भी कुछ भूल जाते हैं क्या! इसलिए इन महापुरुषों की चिन्तनधारा में धर्म भली प्रकार सुरक्षित था। किन्तु धर्म का सर्टिफिकेट (प्रमाण-पत्र) देने का भार उन लोगों के पास था जो धर्माध्यक्ष

बनकर बैठे थे। राजाओं के बाजू में उनकी एक सीट हुआ करती थी, उनका चुनाव होता था। जैसे आजकल भारत में चुनाव होता है, वैसे ही चुनाव होता था। वह हो गये धर्माध्यक्ष, सर्टिफिकेट उनके पास। उन्होंने कह दिया– कौन क्या खाये, कौन क्या पहने, कौन झोपड़ों में रहे, कौन महलों में रहे, कौन ऊँचा पद पाये, कौन नीचा पद पाये, कौन शुद्ध अन्न खाये, कौन सारहीन अन्न खाये.... अब धर्माध्यक्ष जो ठहरे। इन्होंने ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया, और कोई कारण नहीं। उन्होंने जो व्यवस्था पारित की थी आज उसमें से रंचमात्र भी कहीं कुछ नहीं बचा। आज छुआछूत है?, ऊँच-नीच है? लिखा हुआ है कि रक्षा का भार, मन्त्री पद, न्याय पद, शिक्षा पद, धर्म पद, और जितने भी वरिष्ठ पद हैं.... सेना का भी न्याय-नीति निर्धारण ब्राह्मण करेगा, क्षत्रिय केवल लड़ेगा। और राजा भी राज करेगा तो तीन ब्राह्मणों से पूछकर। वो जैसा कहे, वैसा करे। ब्राह्मण से परामर्श ले, स्वयं न्याय करेगा तो नर्क में जायेगा।

मीरा को जहर दिया था उसके परिवार के सामने तो इन्हीं धर्माध्यक्षों ने। नरसी मेहता को मृत्युदण्ड दिया इन्हीं धर्माध्यक्षों ने, और धर्माध्यक्ष भी सगा साला था। एक बवंडर आया और वे व्यवस्थायें भंग हो गयीं। जो ऊँचे-ऊँचे पद ब्राह्मणों के लिए आरक्षित थे, अब वह पद आरक्षित हो गये जिन्हें कभी अछूत कहा गया था। वे हैं नहीं, कहा था, वे पद उनको मिल गये।

भारत में कभी जातियाँ थी ही नहीं, अस्पृश्य कोई था ही नहीं। ये धन्धों के नाम थे। रथ चलाया तो सूत, शस्त्र चलाया तो क्षत्रिय, पोथी पलटा तो पण्डित, पढ़ाया-लिखाया तो आचार्य, केवल शिकार पर निर्भर तो आखेटक, लेकिन सबका धर्मशास्त्र एक 'गीता' थी। विश्व का धर्म सुरक्षित था, आज भी सुरक्षित है, आज भी आपका धर्मशास्त्र गीता है।

महापुरुष कहीं भी, किसी भी भाषा में उत्पन्न हुआ हो, वह सामाजिक व्यवस्थाओं से अलग-थलग होता है। वह किसी कबीले, किसी जाति में नहीं रह जाता। परमात्मा ही उनकी जाति है और गुरु-दरबार ही उनकी आचार्य-पद्धति होती है। उन्हीं में से एक कबीर हुए।

लहर तालाब पर पड़ा एक बालक मिल गया, चीं-चीं कर रहा था। नीरु जुलाहा और उसकी धर्मपत्नी निमा बैलगाड़ी से जा रहे थे। आवाज सुना तो बोले– बच्चा रो रहा है। उसे उठाया, बोले– अल्लाह-ताला ने सुनवाई तो कर ली। उनको सन्तान नहीं थी। बड़े स्नेह से उसको पाला, कबीर नाम रखा। कुरान भी पढ़ाया।

जब बड़ा हुआ तो लगा मन्दिर-मन्दिर घूमने। काशी में मन्दिर छोड़कर था ही क्या। फिर लगा संतों की कुटिया में घूमने। संत रामानन्द स्वामी की कुटिया में उनको आराम मिलने लगा। जाकर दरवाजे से चिपककर खड़ा हो जाये लड़का तो लोग भगा दें। फिर धूम-फिरकर जाकर वहीं खड़ा हो जाय, तब फिर लोग कहें कि जुलाहा बड़ा ढीठ है, जब देखो यही चिपका रहता है, भाग-भाग।

तब कबीर ने सोचा कि गुरुजी की दिनचर्या क्या है। पता चला कि बड़े सवेरे चार बजे इस रास्ते से गंगा जी स्नान करने जाते हैं। कबीर रात ही में जाकर सीढ़ियों पर लेट गया। गुरुजी का चरण जब पेट के ऊपर पड़ा तो झुककर उठाते हुए बोले– बच्चा राम राम कहो, राम राम। कबीर बोला– राम राम गुरु महाराज, हम मन्त्र पा गये। रामानन्द जी बोले– अरे कबीरा तू। कबीर बोला– हाँ गुरु महाराज। रामानन्द जी बोले– ओह, तुम बड़े लगनी हो। अब तुम्हें आश्रम आने से कोई नहीं रोकेगा। एडमिशन (प्रवेश) हो गया।

रामानन्द जी के हजारों शिष्य थे किन्तु सर्वोपरि शिष्य निकले तो कबीर, रैदास इत्यादि। इसलिए ईश्वर-पथ में आपकी कुलीनता नहीं लगती। यह समाज के कुटुम्ब-कबीलों की ऊँची-नीची गरिमायें हो सकती हैं, ईश्वर-पथ में जिसे दुर्लभ मानव तन मिला है वह सच्चा अधिकारी है। जितना वरिष्ठ लड़के अधिकारी हैं, उतना ही अधिकारी फुटपाथ वाला भी। कबीर आगे चलकर महापुरुष हुए। पढ़े-लिखे तो नहीं थे–

मसि कागद छूयो नहिं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिउ युग के महातम (कबीर) मुखहिं जनायी बात॥

कागज-कलम तो छुआ ही नहीं, केवल मुख से बताया। वह प्रत्यक्षदर्शी थे। जब कभी-कभी लोग झगड़ जायें, बोले– कबीर साहब! आप बकवाज करते हो, हमारा आपका मन मेल नहीं खाता। तो कबीर ने कहा– भईया! **'तोर मोर मनवा एक कैसे होई रे'**– तुम्हारा और हमारा मन एक जैसा कैसे हो जायेगा?, कैसे मेल खायेगा?

मैं कहता हौं आँखिन की देखी,
तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तुम देते उरझाई रे।
तोर मोर मनवा एक कैसे होई रे।

हम आँखों की देखी कहते हैं, तू कागज की लेखी कहता है। हम यह भवग्रन्थि सुलझाकर मुक्ति प्रदान करने वाली बात करते हैं, तू और भी उलझा देता है। भला तुम्हारा मन एक कैसे होगा?, विचार समान कैसे होंगे? एक बँधा हुआ और एक मुक्त पुरुष के विचार एक जैसे कैसे होंगे?

मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोही रे।।
तोर मोर मनवा एक कैसे होई रे।

हम कहते हैं– जागते रहना। जागते माने–

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।। (गीता, 2/69)

जगतरूपी रात्रि में सभी प्राणी अचेत पड़े हैं, संयमी पुरुष जाग जाता है। तुलसीदास जी ने इसी का विस्तार दिया है–

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।।

(मानस, 2/92/3)

जगतरूपी रात्रि में योगी जाग जाता है। परमार्थ– 'परम+अर्थ' के संग्रहकर्ता हो जाते हैं और प्रपंच के वियोगी हो जाते हैं। तो हम कहते हैं– जागो, तू जाता है सोय। हम कहते हैं निर्मोही रहो, तू जाता है मोय। भला

एक मोह में.... **'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।'** (मानस, 7/120/29)- एक मोह में आकण्ठ डूबा है, और एक मुक्त, अलग हैं, ये एक कैसे!

कबीर पढ़े-लिखे तो नहीं थे लेकिन कबीर ने वैदिक तथ्य को सधुक्कड़ी भाषा में प्रस्तुत किया। सधुक्कड़ी दुनिया में कोई भाषा होती ही नहीं। महात्मा लोग भ्रमणशील होते हैं। गुजरात गये तो कुछ ही समय में गुजराती सीख लिया और अपने हृदय की वस्तु को उस भाषा में प्रस्तुत कर दिया। पंजाब पहुँचे तो पंजाबी सीख लिया, कुछ समय के बाद उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत कर दिया। मद्रास पहुँचे तो उधर की भाषा पकड़ लिया। तो यह खिचड़ी भाषा सधुक्कड़ी भाषा होती है। कबीर ने समझाने की एक शैली ढूँढ़ी, व्यंग्यात्मक ढंग से सुनाना आरम्भ किया। किसी भजन में जागृति का चित्रण है, किसी में साधना की शुरुआत है, किसी में साधना से मिलने वाली विभूतियाँ हैं, किसी भजन में प्राप्तिकाल का चित्रण है। एक भजन में वह महापुरुष कहते हैं–

अवधू अचरज भौ एक भारी, पुत्र धइल महतारी।

1. **पिता के संग में भई बावरी, कन्या रहल कुँवारी।**
   खसमहिं छाँड़ि ससुर संग गौनी, सो किम लेहु बिचारी॥
2. **भाई के संग सासुर गौनी, सासुहि सावत दीन्हा।**
   ननद भोज परपंच रचो है, मोर नाम कहि लीन्हा॥
3. **समधी के संग नाहीं आयी, सहज भई घर बारी।**
   कहत कबीर सुनो हो सन्तो, पुरुष जनम भौ नारी॥

इस शरीर का जन्म माताओं से है लेकिन शरीर एक वस्त्र है। भगवान कहते हैं– अर्जुन! जीर्ण-शीर्ण वस्त्र को फेंककर पुरुष जैसे नया वस्त्र धारण कर लेता है वैसे ही भूतादिकों का स्वामी आत्मा जीर्ण शरीररूपी वस्त्र को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है। यह तो हमारा स्वरूप है ही नहीं। यह तो निर्जीव वस्त्र है, कल का ठिकाना नहीं। लेकिन वही जन्म सराहनीय है जिसके पीछे मृत्यु न हो – वह है आत्मिक जागृति। आत्मा के संरक्षण में चलते हुए परम तत्त्व परमात्मा का दर्शन और स्थिति, सदा रहने वाला जीवन

और सदा रहने वाली शान्ति – वह वास्तविक स्वरूप है, आत्मस्वरूप है। स्वरूप को जन्म देती है तो भक्ति। विभक्ति माने अलगौजी, भक्ति माने प्रभु से मिलना। भक्ति का आरम्भिक आचरण होता है– अभ्यास और वैराग्य, विवेक, अनुराग, समर्पण, श्रद्धा।

अवधू अचरज भौ एक भारी, पुत्र धइल महतारी।

उससे ही हमारी जागृति है। जब साधक पहले भक्तिरूपी माता को भली प्रकार अपने में संजो लेता है, कहीं त्रुटि न रखकर अपने में धारण कर लेता है, **'पुत्र धइल महतारी, अवधू अचरज भौ एक भारी।'** तो एक आश्चर्यजनक घटना घट गयी, शनैः-शनैः भजन जागृत हो गया। उस दिन से जन्म है, फिर है विकास। तो–

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। (गीता, 13/11)

अर्जुन! आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलना, उनके संरक्षण में निरन्तर चलते हुए परम तत्त्व परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन, दर्शन के साथ मिलने वाली जानकारी ज्ञान है; और सृष्टि में जो कुछ है वह अज्ञान है। उसे जानकर तत्क्षण उसी भाव को प्राप्त हो जाता है। वही जन्म सराहनीय है जिसके पीछे मृत्यु न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! जानते हो, ईश्वर कहाँ रहता है?

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। (गीता, 18/61)

अर्जुन! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। तो लोग देखते क्यों नहीं? मायारूपी यन्त्र में आरूढ़ होकर सब लोग भ्रमवश चक्कर लगाते ही रहते हैं, इसलिए नहीं जानते। ईश्वर हृदय में है तो शरण किसकी जायं?

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। (गीता, 18/62)

अर्जुन! उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाओ। भजन एक परमात्मा का। नश्वर नाश ही करेगा, मुक्ति कभी नहीं देगा। हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाओ, सम्पूर्ण भावों से जाओ, पूर्ण श्रद्धा से जाओ। मान लो, अन्य जगह जो श्रद्धायें बिखरी हुई हैं उनको छोड़ा, और एक हृदयस्थ ईश्वर की शरण चले गये तो उससे लाभ क्या? **'तत्प्रसादात्परां शान्तिम्'**– तुम परम शान्ति प्राप्त कर लोगे, **'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'**– उस निवास-स्थान को पा जाओगे जो शाश्वत है। सदा तुम्हारा धाम रहेगा और सदा रहने वाला जीवन पा जाओगे, अर्जुन! तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। वह अविनाशी है तो अविनाशी पद प्राप्त। तो वही जन्म सराहनीय है जिसके पीछे मृत्य न हो। उस अपने स्व-स्वरूप की प्राप्ति का साधन केवल भक्ति है। उस स्वरूप को जन्म देती है तो भक्ति। भक्ति अलग कोई माता तो है नहीं। भक्ति को हमें धारण करना पड़ेगा, भक्ति का आश्रय लेना पड़ेगा, उसी से हमें स्व-स्वरूप की जागृति है। तो– **'पुत्र धइल महतारी, अवधू अचरज भौ एक भारी।'**

जब भक्ति का संचार हो गया, भक्ति जागृत हो गयी तो–

पिता के संग में भई बावरी, कन्या रहल कुँवारी।

एक माता-पिता तो सबके पास, लेकिन भगवान कहते हैं– अर्जुन! मैं ही बीजरूप से पिता और प्रकृति ही गर्भ धारण करनेवाली माता है; और तो सब निमित्त मात्र हैं। तो परम पिता परमात्मा के साथ बावरी हो गयी। भजन शरीर नहीं करता, इष्टोन्मुखी लगन जागृत हो जाती है वह भजन किया करती है, करवा लेती है – लौरूपी लड़की। जब लगन विद्या से संयुक्त होती है तो विकारों से उपराम उठ जाती है। कु माने दूषित, अरि माने काटना। तो– **'पिता के संग में भई बावरी'**– पागल हो गयी, विरह में खो गयी। कब? जब **'कन्या रहल कुँवारी'**– यह लौरूपी लड़की विकारों को काटकर उपराम प्रवाहित हुई, काया जब विकारों से जरा-सी ऊपर उठी तब।

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना।।

(मानस, 5/33/3)

हे पार्वती! जिसने प्रभु का प्रभाव जान लिया उसको भजन छोड़कर और कुछ प्यारा लगता ही नहीं। **'पिता के संग में भई बावरी'**– भजन तो सभी करते हैं, बावरे तो नहीं हो पाते। सब चाहते तो हैं कि डुब जायें, प्रभु आपके चिन्तन में खो जायें, लग तो नहीं पाते। यह गुण मीरा में आ गया– **'लोग कहें मीरा भई बावरी, सास कहे कुलनाशी रे।'** लोगों ने कहा– यह नौलखा हार फेंककर, श्वेत वस्त्र पहनकर, तुलसी की माला डालकर घूम रही है, गरीबों की कुटिया में पहुँच जाती है। जहाँ मजीरा की धुन सुनाई पड़ी तो महल त्यागकर वहाँ दिखाई पड़ी। लोग कहें– मीरा पागल हो गयी है। लोग तरसते हैं इस सोने की सिकड़ी के लिए, यह सोलह शृंगार फेंककर देखो ऐसे ही घूम रही है। सास कहे– पागल हो जाती तब भी खैरियत थी, किसी कोठरी में पड़ी जीवन काट देती, यह कुल में कलंक पैदा हो गयी। **'सास कहे कुलनाशी रे'**– कुल का विनाश करने आयी है, हम महारानियों के सम्मान में दाग लगाने आयी है। आज उस कुलवन्ती सास को तो कोई नहीं जानता लेकिन मीरा को संसार जानता है।

जब स्तर इतना उठ जाये कि विद्या से संयुक्त हो, विकारों का अन्त करके वृत्ति उपराम प्रवाहित हुई तो पिता – परम पिता परमात्मा के साथ **'पिता के संग में भई बावरी, कन्या रहल कुँवारी।'**

भगवान के साथ बावले होने के दो तरीके – एक तो समर्पण के साथ भजन करो, जिसका नाम है भक्तिमार्ग। कर्म करने में अधिकार है, फल में कभी नहीं। फल की वासना वाला न हो। समर्पण के साथ कर्म में प्रवृत्त भर रहो, यूँ समझ की फल है ही नहीं। इस प्रकार जो लग जाता है,

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गीता, 9/22)

अर्जुन! इस प्रकार अनन्य भाव से अर्थात् अन्य किसी का स्मरण न करते हुए सम्पूर्ण भाव से जो मुझमें लग जाता है, सतत्, निरन्तर, श्रद्धा के साथ मेरे आश्रित होकर लग जाता है, अपने भरोसे नहीं, ऐसे भक्त का योगक्षेम

का भार मैं स्वयं निर्वाह करता हूँ। योग पढ़ाना, अनन्त प्रकृति के अन्धकारपूर्ण खोह-खन्दकों से निर्विघ्न उस पार ले जाना, दृष्टि देना, दर्शन, स्पर्श, स्थिति और प्रवेश दिलाना – यह सारा भार मैं स्वयं वहन करता हूँ। तो भक्तिमार्गी भगवान के भरोसे होता है। लेकिन एक मार्ग भगवान के भजन का और भी चला हुआ है, कबीरकाल में भी था–

खसमहिं छाँड़ि ससुर संग गौनी, सो किमि लेहुँ बिचारी।

'खसमहिं छाँड़ि ससुर संग गौनी'– समत्व के ख्याल को छोड़ दिया और 'स्व-सुरा'– अपनी श्वास के साथ गमन करने लगे।

एक ऐसी भी परिपाटी चल गयी थी कबीर काल में, आज भी हो सकती हैं। घर छोड़ा, तीन-चार-छः महीना जब थ्योरी नहीं स्टडी हुई तब तक तो साधक है। और थ्योरी समझ में आ गयी तब बस संसार मिथ्या है, मृग-मरिचिका है, मैं तो आत्मा हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ, इन्द्रियाँ अपने अर्थों में बरतती हैं, मैं तो शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, सनातन तत्त्व हूँ.... बस हो गया – ये है समत्व के विचारों को धारण करना। कबीर कहता है– नहीं, जब प्रभु के साथ समत्व से लौ लग गयी... परमात्मा को भजने का यह भी तो एक तरीका सुनाई देता है, बोले– नहीं, **'खसमहिं छाँड़ि'**– यह समत्व का ख्याल छोड़कर, **'ससुर संग गौनी'**– स्व माने अपनी श्वास के साथ गमन किया।

भजन का उतार-चढ़ाव श्वास पर है। गुरु महाराज कहते थे– जो श्वास का भजन नहीं जानते ऐसे साधकों को महापुरुष अपनी कुटिया में दो रोटी भी नहीं देते थे। क्यों? स्वयं गुमराह है, घूम-घूमकर उल्टा-सीधा बताकर और चार आदमी को गुमराह ही तो करेगा। इसलिए भजन का सम्पूर्ण उतार-चढ़ाव श्वास पर है। पहले तो माला से ही जपा जाता है, आरम्भ वहीं से होता है। आरम्भ कैसे भी कर सकते हो – नाचकर, गाकर, कूदकर, अश्रु बहाकर, लेकिन जब भजन जागृत हो गया तो उसका आधार श्वास पर है।

माला बनाई काठ की, बड़े जतन से फेरु।
वो तो माला श्वास की, नहीं गाँठ नहीं मेरु॥

'माला बनाई काठ की'– यह अनर्गल नहीं है, **'बड़े जतन से फेरु'**– कल दस माला फेरी तो आज ग्यारह फेरो, सौ फेरो, अपनी संख्या बढ़ाओ, मन को इस लाईन पर लगाओ किन्तु– **'वो तो माला श्वास की, नहीं गाँठ नहीं मेरु।'**– असली माला श्वास की है, उसमें न तो कहीं गाँठ है और न सुमेरु है। **'निरंजन माला घट में फिरे दिन रात।'**– जन्म हुआ, जब तक आयु के दिन पूरे नहीं होंगे तब तक यह चलती ही रहेगी।

माला तो चल रही है, केवल मन को सब ओर समेटकर उसमें लगा भर दो। देखो, कब श्वास आई, कितनी रुकी?, कब गई, कितनी रुकी?, फिर कब लौटकर आई? – इसको देखो। तीन-चार बार जब देख लोगे, मन जब देखने लगे तब आहिस्ते से चिन्तन से इसमें नाम ढाल दो। श्वास आई तो ओम्, गयी तो ओम्... ओम्... ओम्...। गीता ओम् पर बल देती है, वैदिक ऋषि ओम् ही जपते थे, भक्तिकालीन ऋषि राम जपने लगे। जो अर्थ ओम् का है, वही राम का है। ओ माने वह अविनाशी परमात्मा, अहं माने आप स्वयं – जिसका निवास आपके हृदय देश में है। राम माने **'रमन्ते योगिनः यस्मिन् स रामः'**– जिसमें योगी लोग निरन्तर रमण करते हैं उसका नाम है राम। **'सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।'** (मानस, 2/257)– सबके हृदय में निवास करता है।.... अर्थ एक। कालक्रम से जब संस्कृत दूबर (कमजोर) हो गयी तो लोकल भाषा में फिर यह चलने लगी। भक्तिमार्गियों ने राम जपा। तुलसी, नानक, कबीर इत्यादि के काल में यह शुरु हुआ। इसलिए श्वास आई तो ओम्, गई तो ओम्। कुछ दिन चिन्तन से जपाना पड़ेगा किन्तु अभ्यास थोड़ा ऊपर उठा तो फिर जपाना नहीं पड़ेगा, श्वास सहज ही कहने लगेगी, श्वास में ढला-ढलाया नाम मिल जायेगा। श्वास नाम के सिवाय और कुछ कहती ही नहीं। मन को द्रष्टा रूप में खड़ा कर दो, देखा भर करें। **'रिनक-धिनक धुनि अपने से उठे'**– ध्वनि प्रवाहित हो रही है, बस सुना भर करें, देखा भर करें। यह अवस्था आ जाने के बाद अलग से नाम जपो, नाम ढालो – यह नहीं रह जाता, फिर केवल श्वास को केवल देखना होता है।

भगवान बुद्ध भी इसी का जाप करते थे, श्वसन क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करते थे कि श्वास आई तो ओम् गयी तो ओम्। विदेशों में अब भी जितने भी बौद्धिष्ट देश हैं, सब जगह लिखा है– ओ-ऊ-म, आ-ऊ-म, ओम्...। जब यह किसी दरवाजे पर लिखा मिल जाता है तो लोग चप्पल खोल देते हैं, प्रणाम भी करते हैं तब आगे बढ़ते हैं। यहाँ तो आपस की टशन के मारे लोगों ने कह दिया कि बुद्ध तो नाम कहते ही नहीं थे। तो फिर श्वास क्यों देखते थे? श्वास में नाम ढल जाता है तो अलग से कहने की आवश्यक्ता नहीं रह जाती, कारण कि श्वास नाम के सिवाय और कुछ भी नहीं कहती जब जागृत हो जाती है तब।

समत्व के ख्याल को छोड़कर स्वसुरा के साथ गमन किया, जब लौ लग गयी, लगन जब विकारों से उपराम उठ गयी तब–

खसमहिं छाँड़ि ससुर संग गौनी, सो किम लेहु बिचारी।।
संतो! अचरज भौ एक भारी।

संतो! इस संसार में एक आश्चर्यजनक घटना घट गयी। भला क्या आश्चर्य था? **'पुत्र धइल महतारी, संतों अचरज भौ एक भारी।'**– पुत्र ने माता को बरबस जाकर अपने में समाहित किया, धारण किया। इस स्व-स्वरूप की जागृति और जन्म का कारण भक्ति ही माता है। उसको भक्ति तो करना होता है, धारण करना होता है।

अगले पद में कहते हैं– श्वास के साथ तो सभी गमन करना चाहते हैं, लेकिन होता नहीं। श्रद्धा की कमी है इसलिए नहीं होता।

भाई के संग सासुर गौनी, सासुहि सावत दीन्हा।

एक तो संसार में भाई दाहिना हाथ है, लेकिन ईश्वर पथ में भाव भाई होता है। **'भावे विद्यते देवः'**, **'भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।'** (मानस, 7/92ख) भगवान भाव के बस में हैं। सुख की निधि, करुणा के धाम हैं प्रभु। भाव का ही दूसरा नाम श्रद्धा है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– श्रद्धाविहीन किया हुआ कर्म, जपा हुआ जप, तपा हुआ तप, दिया हुआ

दान और यज्ञ सब व्यर्थ चला जाता है जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ (गीता, 4/39)

अर्जुन! श्रद्धावान और संयतेन्द्रिय ज्ञान प्राप्त कर पाता है। इस क्षण ज्ञान प्राप्ति और दूसरे ही क्षण वह स्थिति पा जाता है, फिर एक क्षण ज्यादा नहीं लगता। श्रद्धा, भाव, प्रेम – यह पर्यायवाची शब्द हैं। तो–

भाई के संग सासुर गौनी, सासुहि सावत दीन्हा।

ईश्वर-पथ में आपका सगा हितैषी, सहोदर, भाई है तो भाव, श्रद्धा। भावों से संयुक्त होकर उस स्व-श्वास में लगो तो आपकी सुरत लग जायेगी। और भावों से संयुक्त होकर जब लगा, श्रद्धा एक जगह केन्द्रित हो गयी तो मन जरुर लगेगा।

'भाई के संग सासुर गौनी'– जहाँ श्वास-प्रश्वास में सुरत लगी, श्वास एकदम बाँस की तरह खड़ी हो गयी। श्वास आई तो ओम्, गयी तो ओम्। दूसरा विकल्प बीच में न पैदा हो, लौ लग जाये, श्वास में तैलधारावत् वृत्ति खड़ी हो जाय, जहाँ धारावाही चिन्तन चला, **'सासुहि सावत दीन्हा'**– इस श्वास में एक सौत प्रकट हो जाती है। विद्या से संयुक्त होकर हम चले थे, अविद्या इसमें है, वह बीच में उपद्रव खड़ा कर देती है।

छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया॥

(मानस, 7/117/6)

माया देखती है, बेटा हमारे चंगुल से निकल जाना चाहता है, अनेक विघ्न उपस्थित करती है। यह भी हरिप्रेरित ही होती है। सर्वथा नष्ट तो नहीं कर पायेगी, हिला जरुर देगी। माया अनेक विघ्न उपस्थित करती है–

कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥

(मानस, 7/117/8)

वह कल करेगी, बल करेगी, छल करेगी, हर हालत में तुम्हारे करीब जायेगी। तब भी बेटा चंगुल में नहीं फँसा तब?

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई।।

(मानस, 7/117/7)

तब माया रिद्धियाँ प्रदान कर देगी, भण्डार भर देगी और सिद्ध बना देगी। बाजू से निकल भर जाओ, मरणासन्न है, श्वास रुक भी गई है तो पुनः संचार हो जायेगा। भले हो जाए, उस पथिक की अवस्था ही ऐसी है, हो भी जाना चाहिए, लेकिन बाबाजी ने सोचा कि 'अरे, मेरे पराक्रम से हो गया', बस माया कामयाब। कारण कि– **'ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।'** (योगदर्शन, 3/37) सिद्धियाँ प्रकट होती हैं, वास्तव में सिद्धि है लेकिन कैवल्य की प्राप्ति के लिए उतना ही बड़ा विघ्न है जितना काम-क्रोध-राग-द्वेष-वासनायें इत्यादि। माया कामयाब। कुछ दिन तो वह चलेगा, उसका कहा-सुना होगा, फिर बाद में–

ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा।।

(मानस, 7/117/14)

भाव से, श्रद्धा से संयुक्त होकर जहाँ श्वास में लगा तो लौ लग गयी। यदि भाव नहीं तो मन श्वास में नहीं लगेगा। **'भाई के संग सासुर गौनी'**– जहाँ श्वास में सुरत लग गयी, श्वास में तैलधारावत् वृत्ति प्रवाहित हो गयी, अन्दर से न कोई उद्वेग उठता है, न वायुमण्डल के संकल्प अन्दर प्रवेश कर पाते हैं। श्वास जिस क्षण स्थिर प्रवाहित हुई तो श्वास में नाम प्रवाहित हो गया। इसी के अन्तराल से एक सौत प्रकट हो गयी, भक्ति की विरोधी।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी।।

(मानस, 7/115/3-4)

माया नाचने वाली नटी मात्र है लेकिन है तो भगवान की, वह प्रकट हो गयी। बन्धन छूटने की घड़ी आयी तो माया अनेक विघ्न उपस्थित करेगी, सिद्ध भी बनायेगी लेकिन मालूम है कि यह सौत है तो साधक उसमें कभी नहीं भटकता। और भगवान के वरदहस्त के नीचे है तो भगवान भटकने ही नहीं देते। और यदि इससे पार पा गया तो कामयाब।

ननद भोज परपंच रचो है, मोर नाम कहि लीन्हा।।
संतों अचरज भौ एक भारी।

और इससे जब आगे बढ़ गया, आगे निकल गया तो वस्तु विदित है। कबीर कहता है– **'ननद भोज परपंच रचो है'**– 'नेह+आनन्द' से ननद।

नेह निभाया ही सरे, छोड़े सरे न आन।
तन दे धन दे सीस दे, नेह न दीजे जान।।

नेह माने स्नेह। नेह का निर्वाह करने पर भी सरे, आपको सफलता मिलेगी, **'छोड़े सरे न आन'**– नेह को छोड़ देने पर कभी सफलता नहीं मिलेगी, न किसी अन्य तौर-तरीके से मिलेगी। इसलिए तन देना पड़े, धन देना पड़े, सीस भेंट करना पड़े, कर दो, लेकिन **'नेह न दीजे जान'**– स्नेह को न जाने दो। नेह+आनन्द से ननद। ज्यों-ज्यों स्नेह में आप आनन्दित होकर, तन्मय होकर डूबते जाओगे, त्यों-त्यों स्नेह में सुरत लगती जायेगी। ज्यों-ज्यों स्नेह में सुरत लगती जायेगी, त्यों-त्यों भव माने संसार, इस पर विजय मिलती जायेगी, इससे उत्कर्ष होता जायेगा।

तो **'ननद भोज'**– स्नेह आनन्द से भव पर विजय, **'परपंच रचो है'**– सारी साधना-पद्धति स्नेह और स्नेह में विभोर होकर समर्पण के साथ श्वास में लगने पर है, **'मोर नाम कहि लीन्हा।। संतों अचरज भौ एक भारी।'**– ज्यों-ज्यों स्नेह में प्रेमपूरित हृदय से डुबते जाओगे, त्यों-त्यों यह प्रकृति का आवरण घटता जायेगा, भव पर विजय मिलती जायेगी। परिपक्व अवस्था आ गयी, बाधा खत्म हो गयी, कहते हैं– यह सारा साधना का प्रपंच है, बस इतने ही के बीच का है। स्नेह में डुबो और इस पर विजय पाओ।

'ननद भोज परपंच रचो है'– भक्ति को पकड़ना और पिता के संग में काया जब वृत्ति विकारों से रहित हो गयी तो **'पिता'**– परम पिता के साथ विभोर होकर, पागल होकर, बावरी होकर लगना, श्वास-प्रश्वास का यजन करना, भाव-श्रद्धापूरित हृदय से श्वास में लगना, त्यों-त्यों भव पर विजय– इसी के बीच की रचना है।

ननद भोज परपंच रचो है, मोर नाम कहि लीन्हा।।
संतो अचरज भौ एक भारी।

प्रपंच तो उतने ही का, लेकिन '**मोर नाम कहि लीन्हा**'। लोग कहते हैं– कबीर अच्छा है, कबीर महात्मा हैं। एक बार कबीर सुनते-सुनते ऊब गये–

कबिरा कबिरा क्या करे, सोधो सकल शरीर।।
आशा तृष्णा बस करे, सोई दास कबीर।।

कबीर अच्छा, कबीर महात्मा.... क्या व्यर्थ की रट लगाये पड़े हो। '**कबिरा कबिरा क्या करे, सोधो सकल शरीर।।**', '**सोधो सकल शरीर**'– सकल शरीर माने कई शरीर?

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।

(मानस, 4/10/4)

एक तो पंचभूतों से यह निर्मित स्थूल शरीर, इसके अन्तराल में एक शरीर है– सूक्ष्म शरीर – दस इन्द्रिय मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार चौदह और तेजस और पराग के रूप में यह आत्मिक तेज प्रवाहित है तो तेजस और पराग – यह सोलह तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर, मन का संसार और तीसरा जो सबका कारण है, बीजरूप से मेरे तेज के अंशमात्र से सब प्रसारित होता है– वह है आत्मा का संचार जो सबका कारण है। क्रमशः तीनों शरीरों की शोध प्राप्त कर लो किन्तु आशा और तृष्णा में रहते हुए शोध सम्भव नहीं, इसलिए– '**आशा तृष्णा बस करे, सोई दास कबीर।।**' इतना हमने किया है इतना तुम कर लो, तुम भी कबीर। महापुरुषों की उपलब्धि बच्चे-बच्चे के लिए, सबके लिए सुलभ है।

ननद भोज परपंच रचो है, मोर नाम कहि लीन्हा।।
संतों अचरज भौ एक भारी।

अन्त में कहते हैं–

समधी के संग नाहीं आयी, सहज भई घर बारी।

'समधी'– सम+आदि से समाधि। महर्षि पातंजल समाधि का चित्रण करते हैं– **'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।'** (योगदर्शन, 3/3)– जिस लक्ष्य का हम चिन्तन करते हैं, देखते हैं, वह लक्ष्य मात्र बच जाये, चित्त का निज स्वरूप शून्य हो जाये, इसका नाम है समाधि। और इसके बाद जो परिणाम निकलता है, सम+आदि से समाधि, जो आदि तत्त्व है, अनादि तत्त्व है उसी के साथ समत्व प्राप्त होना समाधि कहलाती है। **'समधी के संग नाहीं आयी'**– समाधि मिली, उसके साथ में नहीं रही। यह नहीं कि जन्मभर आँख ही मूँदते रहो, **'सहज भई घर बारी।' 'बिधि न बनाये, हरि आप बनी आये।'**– जो सहज है, स्वयंसिद्ध है, ज्योतिर्मय है, कण-कण में व्याप्त है, वही हमारा घर और द्वार हो गया। वह आत्मा कण-कण में व्याप्त है, ज्योतिर्मय है, स्वयंसिद्ध है, व्याप्त है, अपरिवर्तनशील है, **'सहज भई घर बारी'**– वह सहज है, स्वयंसिद्ध है, उसमें प्रवेश, स्थिति मिल गयी। उसमें समाधिस्थ हो गया तो फिर समाधि लगाने की जरुरत नहीं। आगे लगकर ढूँढ़ोगे किसको? तो– **'समधी के संग नाहीं आयी'**। क्यों? जहाँ आदि तत्त्व से समत्व मिला, यह सर्टिफिकेट (प्रमाण) मिला तो **'सहज भई घर बारी।'** भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! तू मुझे प्राप्त होगा, मेरे अविनाशी स्वरूप को प्राप्त होगे, सदा रहने वाला जीवन और सदा रहने वाली शान्ति प्राप्त कर लोगे। कबीर साहब कहते हैं– वह प्रभु सहज है, **'सहज भई घर बारी'**।

सहज घर-बार में आपका स्वरूप क्या था?

कहत कबीर सुनो हो सन्तो, पुरुष जनम भौ नारी॥
संतों अचरज भौ एक भारी।

संत कबीरदास जी कहते हैं– संतो! ध्यान दो, **'पुरुष जनम'**– पुरुष का जन्म हो गया और **'भौ नारी'**–भव न्यारी - भव से निर्लेप हो गये, अलग हो गये।

एक तो आप स्त्रियों को नारी संज्ञा मिली है, लेकिन याज्ञवल्क्य ऋषि जब घर छोड़कर चले, दो भार्याओं – मैत्रेयी और कात्यायनी को धन-दौलत

आधा-आधा बाँट दिया। एक ने तो ले लिया, लेकिन मैत्रेयी ने प्रश्न कर दिया– क्या इस धन से मेरा मोक्ष, कल्याण हो जायेगा? तो याज्ञवल्क्य बोले– असंभव है। धन से कभी किसी का कल्याण नहीं हुआ। हाँ, तुम्हारा शरीर-निर्वाह हो जायेगा। मैत्रेयी ने कहा– हमें वह चाहिए जिससे आत्मकल्याण हो। तब ऋषि बोले– आत्मचिन्तन, अभ्यास, साधना...। यह कहकर याज्ञवल्क्य ऋषि चले गये।

दो-एक मील जब जंगल में प्रवेश किया, घूमकर देखा तो पीछे मैत्रेयी भी चली आ रही थी। याज्ञवल्क्य बोले– अरे! तुम कहाँ? वह बोली– वही आत्मपथ पर। याज्ञवल्क्य बोले– तुम हमारे लिए संगदोष हो, विघ्न हो। मैत्रेयी ने सादर प्रणाम किया और दूसरी दिशा में निकल गयी।

महर्षि याज्ञवल्क्य जी के गृहत्याग के ठीक बारह वर्ष बाद जनक के एक विशाल यज्ञ में बड़ा संत सम्मेलन था। राजा-महाराजा लोग समय-समय पर जो कुरीतियाँ फैल गयी थीं उनको दूर करने के लिए संत-सम्मेलन किया करते थे। इसीलिए प्रयाग में कुम्भ मेला लगता भी है। जनक ने घोषणा कर रखी थी– 'दस हजार गाय खड़ी हैं, अलंकृत हैं, सोने से सींग मढ़े हैं, सर्वोपरि विद्वान महापुरुष हो, वह ले जाये।'

वर्षों प्रतियोगिता चली, गायें खड़ी की खड़ी रह गयीं। याज्ञवल्क्य जंगल से आये, उन्होंने कोई शास्त्रार्थ नहीं किया, शिष्यों को आदेश दिया– गायें आश्रम ले चलो। जनक भी जानते थे, महापुरुष हैं, कोई कुछ बोला ही नहीं। उसी सभा में गार्गी बैठी थी, वह खड़ी हो गयी–

अहं पश्यामि विप्रेंद्र जगदेतदपौरुषम्।
नपुंसकमहं तद्वदहं स्त्री च पुमानहम्।। (आत्मपुराण, 5/331)

हे विप्र श्रेष्ठ! मैं इस पूरे जगत को पुरुष से हीन देखती हूँ। मैं ही पुरुष हूँ, मैं ही नपुंसक हूँ, मैं ही स्त्री हूँ.... भला किस प्रकार?

नपुंसकः पुमान् ज्ञेयो यो न वेत्ति हृदि स्थितम्।।
पुरुषं स्वप्रकाशं तमानंदात्मानमव्ययम्।। (आत्मपुराण, 5/332)

विप्रवर! वह पुरुष होते हुए भी नपुंसक है, नारी है प्रकृति के आधीन है तो प्रकृति है। प्रकृति में जहाँ आशा होगी वहीं जन्म होगा। जरुरी नहीं कि आपको अगला जन्म पुरुष का ही मिले। (कई बार अर्जुन भी पुरुष से स्त्री के रूप में परिवर्तित हुआ था।) वह पुरुष होते हुए भी नपुंसक है, नारी है जो हृदय में स्थित आत्मा को नहीं पहचानता। आत्मा पुरुष स्वरूप है, उत्तम आनन्द से युक्त है और अव्यक्त है। कबीर कहता है– **'पुरुष जनम भौ'**– वह जो परम पुरुष है, शाश्वत है, सत्य है, उसका जन्म हो गया। और, **'भौ नारी'**– भव से हम निर्लेप हो गये, छुटकारा मिल गया। तो भक्ति ही माता है। इस शरीर का जन्म माताओं से लेकिन स्व-स्वरूप की उपलब्धि, जागृति और परवरिश आज तक भक्ति की ही गोद में सम्भव रहा है। लेकिन आपको भक्ति को श्रद्धा से धारण करना है– **'अवधू अचरज भौ एक भारी, पुत्र धइल महतारी।'**

शरीर पानी का बुलबुला है। जाँच भी हुई तो इसमें करीब 94 प्रतिशत तरल पदार्थ है, 6 प्रतिशत ठोस। कबीर के पास कोई जाँच यंत्र तो नहीं था लेकिन अनुभव में देख लिया कि पानी का बुलबुला है।

पानी केरा बुदबुदा, मानुष धरिया नाम।
चार दिना का पाहुना, बढ़ि बढ़ि रूँधे ठाम॥

यह भी हमारा, यह भी हमारा.... अंत में कुछ नहीं। साथ जाने वाला धन आत्मिक सम्पत्ति है। वह स्थिर सम्पद् है, निज धन है, एक बार मिल गया तो कभी साथ नहीं छोड़ेगा। वह मोक्ष दिलाकर ही दम लेगा क्योंकि ईश्वर-पथ में आरम्भ का नाश नहीं। और ईश्वर-पथ की सम्पूर्ण विधि गीता है। गीता मानव मात्र का धर्मशास्त्र है। यह परम पुरुष परमात्मा के मुख से निःसृत सीधा प्रसारण है। इसमें न ही संदेह है, न भविष्य में संदेह की गुंजाइश है।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

असरा के घिउआ सनेहियाँ के बाती

ऋषि अगस्त्य के पास हजारों शिष्य थे, पर सुतीक्ष्ण सीधा-साधा भोला-भाला था। वह हर समय भगवान के प्रेम के नशे में घूमता था, सराबोर रहता था। जब दुनिया अपने अनुकूल व्यवहार नहीं पाती तो कहती है– यह नीच है, बुद्धिहीन है। शिष्यों और गुरुभाईयों ने कहा– गुरुदेव! इसको भी कोई जगह दे दी जाय, सेवा का कुछ तो अवसर दे दिया जाय।

अगस्त्य ऋषि जानते थे कि यह होनहार है, बोले– ठीक है। तुम ऐसा करो, पूजा की चौकी साफ कर दिया करो, शालीग्राम को गोदावरी में स्नान करवाकर लाकर रख दिया करो।

सुतीक्ष्ण शालीग्राम को लेकर गोदावरी में रोज स्नान कराने जाते थे। गोदावरी के किनारे जामुन फली हुई थी। सुतीक्ष्ण लड़का ही तो था, शालीग्राम की मूर्ति से मार-मारकर जामुन गिराने लगा और खाने लगा। जब पेट भर जाये तो शालीग्राम धोकर लाकर रख दिया करे। आहिस्ते-आहिस्ते नीचे की जामुन खत्म हो गयी, ऊपर वाली रह गयी। तब लगे खींच-खींचकर मारने। एक दिन शालीग्राम जी नदी के मध्य चले गये, जल में डूब गये। सुतीक्ष्ण ने बहुत डुबकियाँ लगाईं लेकिन शालीग्राम नहीं मिला। तब शालीग्राम के स्थान पर एक गोलमटोल पका हुआ जामुन रख दिया।

पका हुआ जामुन था, गुरुजी ने जहाँ चन्दन लगाने को ऊँगली बढ़ाई तो ऊँगली धँस गयी। तब सुतीक्ष्ण को बुलाया, बोले– क्यों रे, यह क्या है? सुतीक्ष्ण बोला– गुरुदेव! शालीग्राम। गुरुदेव बोले– यह घुल क्यों रहा है? सुतीक्ष्ण बोला–

पुनि पुनि चन्दन, पुनि पुनि पानी।
शालीग्राम सड़ गये तो, हम क्या जानी।।

गुरुजी बोले– तेरी ब्रह्मज्ञानी की! जाओ, असली भगवान लेकर आना, नहीं तो मुँह मत दिखाना। दो-चार डण्डा मारा और भगा दिया।

अब सुतीक्ष्ण घोर जंगल में जाकर विचार करने लगा– एक साधारण-सी सेवा गुरुदेव ने दी, वह भी पार नहीं लगी। अब तो बहुत बड़ी जिम्मेदारी दे दिया– 'असली भगवान को लेकर आना'। अब मैं भगवान को कहाँ पाऊँ!

जंगल में एक झोपड़ी बना लिया और भजन करने लगा। उतने बड़े महापुरुष के आश्रम में रह रहा था तो रहनेवालों को भी भजन की विधि भली प्रकार मालूम हो जाती है, श्रद्धा से लग जायं तो सबमें जागृत हो जाती है क्योंकि ईश्वर के यहाँ पक्षपात नहीं, और कल पर नहीं टाला जाता। वह श्रद्धा से लग गया, लगा भजन करने।

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना।।

(मानस, 3/9/1)

अगस्त्य ऋषि का शिष्य था, सुतीक्ष्ण नाम था, भगवान में प्रीति थी।

मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक।।

(मानस, 3/9/2)

मन-क्रम-वचन से राम के चरणों का सेवक था, सपने में भी दूसरे देवता का भरोसा नहीं था। दूसरे देवता तो नाराज नहीं हुए, वह भगवान् को पा गया। भगवान् को रास्ता बदलकर उधर आना पड़ा। आजकल लोग डरते हैं कि भगवान् का भजन करेंगे तो भैरो बाबा न नाराज हो जाय, जगदम्बा, दुर्गाजी, विन्ध्यवासिनी नाराज न हो जाए।.... सब फालतू बात।

जहाँ सुतीक्ष्ण को पता चला कि प्रभु इसी वनप्रान्त में आ गये हैं, तब तकदीर ठोंकने लगा, होनी को मनाने लगा–

हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया।।

(मानस, 3/9/4)

हे विधाता! दीनों पर दया करने वाले प्रभो! क्या मेरे जैसे सठ पर भी दया करेंगे? आपमें कमी क्या? कि,

मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं।।

(मानस, 3/9/6)

मेरे हृदय में दृढ़ भरोसा नहीं, भक्ति नहीं, वैराग्य नहीं, मन में ज्ञान नहीं। कौन ऐसा गुण कि प्रभु कृपा करेंगे, दर्शन देंगे?

नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा।।

(मानस, 3/9/7)

सतसंग नहीं, जोग नहीं, जप नहीं, चरणों में अनुराग भी तो नहीं है। फिर मेरे पास कौन-सी विशेषता है जिससे भगवान् कृपा करेंगे? तो एक गुण समझ में आ गया–

एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की।।

(मानस, 3/9/8)

भगवान् की एक विरदावली है, प्रभु का एक बाना है कि वह उन्हें प्राणों के समान प्यारा होता है जिसे भगवान् को छोड़कर अन्य किसी का भरोसा न हो। तो अन्य का भरोसा तो मुझे नहीं है। इतना मन में आते ही सुतीक्ष्ण खुश हो गया कि अवश्य प्रभु दर्शन देंगे।

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन।।

(मानस, 3/9/9)

अवश्य मेरे नेत्र सफल होंगे, उन पवित्र चरणों का दर्शन करेंगे जो आवागमन, भवबन्धन को तोड़ने वाले हैं, मुक्त करने वाले हैं। सुतीक्ष्ण प्रेम में विभोर हो गया, निमग्न हो गया। वह यह भूल गया, मैं कौन हूँ?, हमारी कुटिया किस तरफ है? जिस जंगल की पगडण्डी में हजारों बार घूमे थे, वही भूल गये।

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा।।

(मानस, 3/9/11)

पूरब किधर, पश्चिम किधर?, मैं कौन? कहाँ जा रहा हूँ?, कहीं कोई परामर्श नहीं।

कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई।।

(मानस, 3/9/12)

चलते-चलते कभी पीछे घूम जायें, कभी गुणगान करके नृत्य करने लगे।

अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा।।

(मानस, 3/9/14)

हृदय में अतिशय प्रीति का प्रवाह देखा तो भव-बाधा हरने वाले प्रभु हृदय में प्रकट हो गये। जहाँ हृदय में स्वरूप आया–

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा।।

(मानस, 3/9/15)

मुनि सुतीक्ष्ण बीच रास्ते में अचल होकर बैठ गये। उन्हें यह ज्ञान ही नहीं था पूरब किधर पश्चिम किधर?, कुटिया किधर?, मैं कौन? इतने प्रेम में डूब गये। **'मग माझ'**– माने फुटपाथ पर नहीं बैठे, पगडण्डी में नहीं बैठे। **'मग'**–मार्ग एक ही है– भक्तिमार्ग, निवृत्तिपथ। रास्ता तो एक ही है। विभक्ति माने अलगौजी, विभाजन। भक्ति माने जुड़ना। जिस पल प्रेमास्पद प्रभु से सुरत जुड़ी, तत्क्षण दर्शन, स्पर्श और प्रवेश मिल गया, सहज स्थिति मिल गयी। उसके आगे भक्तिमार्ग कहीं नहीं जाता। जहाँ पहुँचाना था, पहुँचा दिया।

जब स्वरूप हृदय में आ गया, आगे तो कहीं जाना नहीं था, भगवान् तक ही तो जाना था तो साधक स्थिर होकर बैठ जाता है। मन के अन्दर न आगे कुछ प्राप्ति के संकल्प उठते हैं, न पीछे कोई विकार है जिससे संकल्प उठें और वह भयभीत हो। सुतीक्ष्ण अचल होकर बैठ गया, समाधि लग गयी।

दूसरा है प्रवृत्तिमार्ग – आवागमन का रास्ता। सदा प्रवृत्त रहो, चाल कभी नहीं रुकेगी, पहुँचोगे कहीं नहीं। भवाटवी, भटकाव का रास्ता। वह रास्ता अवश्य है, जीव चलता जरुर है लेकिन पहुँचा कहीं नहीं। उधर से विमुख होकर जब निवृत्तिमार्ग पर आ जाता है तो भगवान के दिग्दर्शन के साथ रास्ता समाप्त। वह स्थिर होकर बैठ जाता है।

सुतीक्ष्ण अचल होकर बैठ गये। भगवान करीब आ गये, जगाने लगे। हाथ पकड़कर हिलाया भी, कोई लाभ नहीं। सुतीक्ष्ण की समाधि टूट ही नहीं रही थी।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा।।

(मानस, 3/9/17)

बहुत जगाया, वह जगे ही नहीं। उन्हें ध्यान से उत्पन्न सुख मिल गया था। तब भगवान ने एक उपाय कर दिया–

भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चर्तुभुज रूप देखावा।।

(मानस, 3/9/18)

भगवान ने अपना राम का स्वरूप भूपरूप तो हटा दिया और चतुर्भुज रूप प्रकट कर दिया। तो–

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनि बर जैसें।।

(मानस, 3/9/19)

मुनि अकुलाकर खड़े हो गये। जैसे सर्प मणि छीन जाने पर विकल होता है वैसे ही विकल होकर खड़े हो गये। यह भूत कहाँ से चला आया? हमारे प्रभु का स्वरूप, हमारे प्रभु कहाँ गये? सुतीक्ष्ण को क्या मालूम कि भगवान के चार हाथ भी होते हैं। जहाँ आँख खुली तो बाहर भी भगवान खड़े थे। जब हृदय में स्वरूप आ जाता है तो जहाँ भी दृष्टि डालो, वहाँ भी भगवान हुआ करते हैं। तब फिर एक स्तर ऐसा आता है, कहने से तो कुछ नहीं मिलेगा। यह स्तर ऐसा है कि–

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

(मानस, 1/7/2)

सारा संसार 'सीय राममय' दिखाई देने लगता है।

बिना गोपाल ठौर नहीं कतहूँ, नरक जात धौ काही?

(कबीर, शब्द 42)

बगैर गोपाल के कहीं जगह ही नहीं है तो भला नरक कहाँ है जिस नरक में जाकर डूबकर मर जाओगे, दुःख भोगोगे। यह एक स्तर है।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।

(मानस, 2/130/7)

न स्वर्ग स्वर्ग के रूप में रह गया जिसकी आप कामना करें, न नरक

नरक के रूप में रह गया जिससे आप भयभीत हों, न बैकुण्ठ बैकुण्ठ के रूप में ही रह गया। जहाँ भी दृष्टि पड़ी, आराध्यदेव के स्वरूप को खड़ा पाया। जब भीतर स्वरूप आ जाता है सृष्टि में कहीं दृष्टि डालो, भगवान हुआ करते हैं।

ईश्वर-पथ में अनादिकाल से जिन-जिन भक्तों को भजन का नशा सवार हुआ, सबकी अवस्था सुतीक्ष्ण की तरह ही थी। सूरदासजी पागल हो गये, जड़भरत पागलों की तरह थे, गुरुनानक भी पागलों की तरह, हमारे गुरु महाराज भी पागलों की तरह, भगवान बुद्ध ने भी चालीस उपवास किया। जब भगवान् के साधना की एक निश्चित दूरी तय हो जाती है, प्रभु से भली प्रकार आसरा बँध जाता है कि अवश्य मिलेंगे, उसी आस को लगाये हुए भगवान के विरह में डूब जाता है। इसी आशय का यह भजन है–

1- असरा के घिउआ सनेहियाँ के बाती।
दरद के दियना, जरे दिन राती।

आसरा बँध गया, भगवान ने विश्वास दिला दिया, अपना परिचय दिला दिया, '**असरा के घिउआ**', और जहाँ परिचय मिला तो सनेह की डोरी लग जाती है। और प्रतीति भी तब होती है कि–

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।

(मानस, 7/88/7)

भगवान से कुछ चमत्कार देखने को न मिले तब तक विश्वास भी नहीं होता। और '**बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।**'– बगैर प्रतीति के विश्वास, हार्दिक लगाव नहीं होता।

प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।

(मानस, 7/88/8)

प्रीति के बिना भक्ति हृदय में सुदृढ़ नहीं होती। सब भक्त ही तो बने हैं, जैसे जल की चिकनाई। किसी जलाशय में देखते हो, लबालब काई जैसी चिकनाई भरी हुई है। हवा में वेग थोड़ा ज्यादा हुआ तो सारी काई सिमटकर

एक तरफ हो गयी जैसे थी ही नहीं। तो सभी भक्त बने हैं, हल्की सी मुसीबत आई तो श्वास ऊपर-नीचे होने लगी– क्या प्रभो! हम दस वर्ष से आपके आश्रम में आते-जाते हैं, आपका भजन करते हैं, संकटमोचन दर्शन किया, हमारा लड़का क्यों बीमार हो गया? नाती के पेट में दर्द काहे हो गया? भक्ति सिमटकर कामनाओं में परिवर्तित हो जाती है, निष्काम कर्मयोग की स्थिति टूट जाती है। इसलिए जब तक भगवान से कुछ चमत्कार देखने को न मिले, तब तक विश्वास नहीं होता। बगैर विश्वास के प्रीति नहीं होती, बगैर प्रीति के प्रतीति नहीं होती। '**जानें बिनु न होइ परतीती**'। प्रतीति माने विश्वास। विश्वास ही नहीं तो प्रीति भी नहीं होती। और जब प्रीति नहीं तो भक्ति नहीं। तो जब भगवान से कुछ सहारा मिल गया तो– '**असरा के घिउआ**'– आसरा बँध गया कि अवश्य मिलेंगे, आसरा का ही घी है। स्नेह से, हृदय से लौ लग गयी, प्रेम, श्रद्धा की डोरी लग गयी तो '**सनेहियाँ के बाती**'। और फिर विरह का दर्द जग गया– '**दरद के दियना जरे दिन राती।**' प्राप्ति के लिए हृदय में तड़प पैदा हो गयी, एक दर्द पैदा हो गया तो '**दरद के दियना, जरे दिन राती।**'

जब बोले तो हरि गुण गावै, मौन रहे तो नाम जपावै॥

साधक बात करे तो हरि का गुणगान, मौन रहे तब हृदय से चिंतन।

जागत में सुमिरन करै, सोवत में लव लाय।
सुरत डोर लागी रहै, तार टूटि ना जाय॥

क्रम न टूटे, दिन-रात एकरस लौ लग गयी। तो– '**दरद के दियना**'– विरह की वेदना है तो यह दीपक '**जरे दिन राती।**'

दीपक का उदाहरण महापुरुषों ने बार-बार दिया–

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

रामनाम मणि दीपक जिह्वा के देहरी के दरवाजे पर रख दो, भीतर प्रकाश– कोई भले-बुरे संकल्प नहीं उठेंगे; और बाहर प्रकाश– बाहर वायुमण्डल

के भले-बुरे चिन्तनों की लहर अन्दर प्रवेश नहीं कर पायेगी। भीतर प्रकाश, बाहर प्रकाश। लेकिन रामनाम मणि दीपक तब प्रज्वलित होता है जब विश्वास सुदृढ़ हो, स्नेह की डोरी लग जाये और आशा बँध जाये, अन्यथा नहीं।

असरा के घिउआ सनेहियाँ के बाती।
दरद के दियना, जरे दिन राती॥

फिर साधक के हृदय में विरह की वेदना, दर्द छोड़कर कुछ रहता ही नहीं।

दरद बा गहना दरदवै सिंगार बा।
दरद के देवता बसिन मोरी छाती॥
दरद के दियना, जरे दिन राती.....

दर्द का ही गहना, दर्द का ही जेवरात, दर्द का ही साज-सज्जा-शृंगार, यही बनारसी साड़ी है। क्योंकि भजन शरीर नहीं करता। इष्टोन्मुखी लगन जागृत हो जाती है, वह भजन करती है। लौ-रूपी लड़की। जब काकभुसुण्डि में लगन लग गयी तो–

मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥

(मानस, 7/109/6)

लौ मन में लगती है। लगन मानसिक प्रवृत्ति का नाम है। लगन यहाँ जागृत होती है। इसलिए जब लगन लग ही गयी, प्रभु के विरह में तड़प पैदा हो गयी, यही है गहना, यही है शृंगार। और जहाँ दर्द है, प्रभु के लिए तड़प है तो वह प्रेमास्पद प्रभु हृदय में रहेंगे, दूसरा विचार तो आयेगा भी नहीं। तो **'दरद के देवता बसिन मोरी छाती।'-** विरह से प्रसन्न होने वाले देव हृदय में बसते हैं।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(मानस, 1/184/5)

वह कण-कण में व्याप्त होंगे, हमारे किस काम के? **'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।'**– प्रेम ऐसी विधि है जिससे वह प्रकट हो जाते हैं। जब हृदय

में विरह हो, वेदना हो, तड़प हो उसका नाम प्रेम है। **'दरद के देवता'**– दर्द के द्वारा, विरह के द्वारा प्रसन्न होने वाले देव **'बसिन मोरी छाती।'**

दरद के दियना, जरे दिन राती।.....

विरह की तड़प पैदा हो गयी, दर्द का दीया जल गया तो फिर–

जागत में सुमिरन करै, सोवत में लव लाय।
सुरत डोर लागी रहै, तार टूटि ना जाय॥

साधक यहाँ बैठा जरुर है, शरीर भर बैठा है लेकिन वह ईश्वर की ओर चल रहा है। ईश्वर-पथ का रास्ता सुरत में संयम से, योगाभ्यास से सिद्ध होता है। वह ज्यों-ज्यों संयमित होता जायेगा, अहर्निश स्तर उठता चला जायेगा। प्रकृति से सम्बन्ध टूट जायेगा और परमात्मा से जुड़ जायेगा। वह रात-दिन चलने वाला पथिक है।

2. दरदवै बा डोलिया, दरदवै कहार बा।

'दरदवै बा डोलिया'– डोली – हमारी साधना का सार, जिस साधना के माध्यम से हम चलते हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि – यह अष्टांगिक योग ही डोली है। और इसमें यदि विरह नहीं, तड़प नहीं तो कुछ नहीं– **'दरदवै बा डोलिया'**।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन!,

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ (गीता, 4/39)

श्रद्धावान् संयमित इन्द्रिय, उस तत्त्व के परायण, उस परम प्रभु के प्रति समर्पित पुरुष ज्ञान प्राप्त करता है। इस क्षण ज्ञान और दूसरे क्षण स्थिति पा जाता है, एक पल भी ज्यादा नहीं लगता। कदाचित् हमारे अन्दर श्रद्धा न हो तब?

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥ (गीता, 17/28)

बिना श्रद्धा के होमा हुआ हवन, दिया हुआ दान, जपा हुआ जप, तपा हुआ तप सब व्यर्थ चला जाता है। न इस जन्म में काम देता है, और न अगले जन्म में साथ देता है। तो ईश्वर प्राप्ति के लिए श्रद्धा अपरिहार्य है। प्रभु प्राप्ति के लिए जब तड़प पैदा हो जाती, जैसे राधा में थी, गोपियों में थी, इसलिए श्रद्धा। वह है विरह वेदना –

दरदवै बा डोलिया, दरदवै कहार बा।

और दर्द ही कहार है। इन्द्रियों का संयम, मन का दमन, विवेक, वैराग्य – यही कहार हैं जो डोली को ले चलते हैं।

कहियो ई दरदवै में लाग जाई माटी।।
दरद के दियना जरे दिन राती।.....

कल प्राप्ति होगी तो आज माया कामयाब हो सकती है। सावधान रहो, जागरुक रहो क्योंकि किसी दिन इस दर्द में मिट्टी लग सकती है, माया चूना लगा सकती है।

कहियो ई दरदवै में लाग जाई माटी।।

एक साधक दस साल की उम्र में साधु हो गया। तीस साल तक की उम्र तक लोगों ने समझा पागल, खप्तुलहवाश है। आहिस्ते-आहिस्ते लोगों में यह भाव आया कि लगता है कोई भजनानन्दी है। उम्र हो गयी सत्तर-पचहतर साल, प्राप्ति की घड़ी आ गयी। उस समय हल्की-सी परीक्षा का सूत्र सामने से गुजरा। एक नबाबजादी, शहजादी, अति सुकुमार कन्या उधर से गुजरी। वह विलक्षण वस्त्र पहने हुए थी, चाल-ढाल भी विलक्षण। जिन्दगी में पता नहीं कितने लड़के-लड़कियाँ बाजू से निकल गये किसी की ओर देखा नहीं, किसी से बात भी नहीं किया, जीवनभर नहीं बोले, आज उसकी दशा देखा तो दया आ गयी कि लगता है ये इस जंगल की प्रान्त की नहीं लग रही है, कहीं से भटककर आ गयी है। इधर शेर-चीते नरभक्षी हैं, पूरे जंगल में पानी कहीं नहीं है। पगडण्डियाँ, सड़कें भी नहीं हैं, कहीं ये भटककर बेचारी मर न जाय।

बाबाजी को दया आ गयी, बोले– देखो, तुम्हारे साथ कोई है तो ठीक, तुम जाओ। वह मुस्कराई और पीछे हट गयी। बाबाजी बोले– बताओ कहाँ जाना है, मैं रास्ता बता दूँ अन्यथा इस जंगल में भटककर मर जाओगी। कहीं पानी भी नहीं है, शेर-चीते भी आजकल नरभक्षी हैं तुम किसी का ग्रास बन जाओगी। और भी मुस्करायी, झूमी-झामी और थोड़ी दूर हट गयी। बाबाजी ने सोचा– इतनी खप्तुलहवाश है, लगता है बहुत लाड़-प्यार में पली है तब न इतनी मनबढ़ है, तभी तो उल्टा-सीधा मुस्करा रही है, कुछ बोल भी नहीं रही है, ये जरुर खतरे में पड़ जायेगी। बाबाजी को दया आ गयी। बाबाजी चलने लगे, वह चलने लगी, बाबाजी दौड़ने लगे वह भी दौड़ने लगी।

आधा किलोमीटर तक दौड़े। अब पचहत्तर साल के महात्मा कहाँ तक दौड़ें! और वह कल की लड़किया फर-फर उड़त चली जा रही थी। अन्त में बाबाजी खड़े हो गये, ससुरी अब तो नहीं बतायेगी, अब मरे चाहे जिये। जहाँ खड़े हुए तो तुरन्त आकाशवाणी हुई– बड़े वेग से आयुपर्यन्त जो साहिबे जन्नत, भगवतस्वरूप की ओर भागा जा रहा था, वही व्यक्ति उतने ही वेग से आज दोजख की ओर भागा जा रहा है, नरक की ओर भागा जा रहा है। अरे, आज से चौथे दिन तुम्हें नबूवत प्राप्त होने वाली थी, अवतार की स्थिति प्राप्त होने वाली थी लेकिन तुम तो चूक गये।

इतना सुनना था कि उठाया कुल्हाड़ी और पाँव काट डाला। पाँव का कोई दोष नहीं था। पाँव को तो मन ने बुद्धि ने आदेश दिया तब पाँव चले इधर-उधर। मन पकड़ में नहीं आया अन्यथा उसको भी काट डालते। उनकी श्रद्धा में कोई कमी नहीं थी लेकिन–

छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया।।

(मानस, 7/117/6)

भगवान बोले– आज से चौथे दिन तुम्हें अवतार की स्थिति प्राप्त होने वाली थी लेकिन चूक गये, जिसे वेग से तुम साधना में, साहिबेजन्नत, भगवत-धाम की ओर चल रहे थे, उतने ही वेग से तुम दोजख की ओर भागे जा रहे हो।

दुनिया में घटनायें तो घटती रहती हैं – मरना-जीना, शादी-विवाह... कही तिलक हो रहा है कहीं सोहर गाया जा रहा है, कहीं नृत्य..... इसी का नाम तो संसार है। साधक को इसमें घूमकर नहीं देखना चाहिए। देख लिया तो उसने भजन का समय काटा है, कटौती की है। यह महापुरुष कहते हैं– **'दरदवै बा डोलिया'**– दर्द ही हमें साधना की, सयंम की डोली.... **'दरदवै कहार बा'**– विवेक है वैराग्य है, शम है, दम है– यही कहार हैं। यदि इसमें विरह वेदना का सम्पुट नहीं तो तुम विरक्त भी नहीं हो। 'जटा फकीरउ आचरण गृहस्थउ'। वह भगत भी नहीं।

कहियो ई दरदवै में लाग जाई माटी॥
दरद के दियना जरे दिन राती।.....

'कहियो' मतलब कभी न कभी, किसी दिन...। कल प्राप्ति होगी तो आज माया कामयाब हो सकती है। इसलिए सावधान रहो, जागरुक रहो। भजन करो तो अहर्निश।

3- दरदवै बा हित-नात दरदवै पड़ोसिया।

संसार में यदि तुम्हारा कोई हितैषी है तो तुम्हारा दर्द, विरह, प्रेम, भगवान में जो लौ लगी है। जिससे बातें करना है उसी से करो, प्रेम से करो। और जब प्रेम प्रभु से है तो बात किससे करोगे? उन्हीं से तो करोगे। तो दर्द ही तुम्हारा पड़ोसी है–

दरदवै बा हित-नात दरदवै पड़ोसिया।
जिनगी के बनल बा दरदवै संघाती॥

इस जिन्दगी का कोई संगी-साथी, हितैषी है तो केवल दर्द।

जब बिरह बेदना की चोटें, उर भेद बेध कर जाती हैं।
दृग 'बिन्दु' निकल पड़ते हैं, पर आती है कहीं दराज़ नहीं॥

(मोहनमोहिनी, पद 182)

'दरदवै बा हित-नात दरदवै पड़ोसिया।'– दर्द ही पड़ोसी है।

हमारे गुरु महाराज जम्मू रेलवे स्टेशन पर खड़े थे, सोचा– इधर कश्मीर जाऊँगा, किसी खोह-खन्दक में पड़कर जिन्दगी काट लूँगा, लौटकर इस मैदानी जगह में कभी नहीं आऊँगा। इतने में एक सरदारजी मिल गये। पंजाबी अजनबी भगत बोला– महाराज! आपके शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं है, प्रतीत हो रहा है, आप कश्मीर जाना चाहते हैं, कश्मीर में तो सिर पर बर्फ जम जाती है, हृदय की धड़कन रुक जाती है, लोग कांगड़ी (अंगीठी) टाँगे रहते हैं। आप हमें रातभर का अवसर प्रदान करें, मैं रातभर में वहाँ के लिए अनुकूल वस्त्र बनवा दूँगा।

उसने पास ही में दर्जी को आर्डर दे दिया और एक-आधा किलो अँगूर लाकर रख दिया। दर्जी वस्त्र सिलने लगा। तब महाराज ने भगवान से पूछा– मैं यहाँ रहने के लिए आया था, ये कहता है सिर पर बर्फ जम जाती है। और कपड़ा आपने छुड़ाया, मैंने छोड़ा नहीं, ये सिलवा रहा है, आखिर हमारे रहने के लिए दुनिया में कहीं स्थान है कि नहीं? तब आकाशवाणी हुई– चित्रकूट जाओ। गुरु महाराज आध्यात्मिक संत थे, तुरन्त भगवान से प्रश्न किया– प्रभो! हृदय में चित्त कूटस्थ हो जाए, अचल-स्थिर ठहर जाए, इसके लिए अभ्यास बढ़ावें या दुनिया में कहीं चित्रकूट है वहाँ जायें? दुबारा आवाज आई– यदि शरीर से रहना है तो दुनिया में जहाँ चित्रकूट है वहाँ जाओ।

तुरन्त अंगूर हाथ में लिए-लिए रात को दस-साढ़े दस बजे रेल की पटरी का किनारा पकड़कर चल दिये। महाराज के लिए भगवान का आदेश भर हो जाए तो रात-दिन बराबर। सुबह तक में कहीं भूल न जायें, गलती न हो जाये, आज्ञा का उल्लंघन न हो जाये इसलिए तुरन्त चल दें।

घूमते-फिरते चित्रकूट आ गये, बोले– अब कहाँ रहें, चित्रकूट तो आ गया? भगवान बोले– सती अनुसुइया। अनुसुइया में तीन जगह बदला और एक स्थान पर भगवान ने कहा– यहाँ पर बैठ जाओ। यही जगह है, जनमभर यहीं रहना है, तुम्हारी जगह यही है। महाराज बैठ गये।

चौदह उपवास भी हुआ, न खाना न पीना, भगवान ने जंगल में लाकर पटक दिया, महाराज को कोई परवाह नहीं थी। जहाँ उस चबूतरे पर चलने

लगे तो सर्प के ऊपर पाँव पड़ गया। काला भुजंग... छः हाथ लम्बा सर्प, पाँव जहाँ बीचोबीच पड़ा तो उसने पाँव को लपेट लिया, महाराज ने झटका तो गिर पड़ा। गिरा फिर शान्ति से आगे चला गया। सर्प में कोई प्रतिक्रिया नहीं कि मेरे ऊपर पाँव पड़ा कि क्या हुआ, काटा भी नहीं। महाराज कहें– हो, रोंवा फूट गया सार, छः हाथ लम्बा... हो, करिया भुजंग जहरीला।

वहाँ अन्तिम एक कोठरी में रोज खून से लथपथ नई-नई हड्डी, चमड़ी, माँस के टुकड़े...। महाराज बोले– बदल-बदलकर कौन फेंक जाता है? छः-सात दिन बाद जब उधर ही ध्यान दिया तो रात को नौ-दस बजे करीब एक गुलबाघ (जो धारीधार शेर से थोड़ा हल्का होता है), अन्दर जा रहा था बाहर आ रहा था, पूँछ ऐंठ रहा था, महाराज को देख रहा था। और दूरी इतनी जैसे झोपड़ी का कोना (15-20 पग)। जब निगाह पड़ी तो महाराज ने कहा– हूँ बेटा, तू भी यही रहता है, और भगवान ने हमको भी यहीं भेज दिया। अब तू अपनी जगह बदल ले क्योंकि अब हमें यहाँ रहना है। पूरा जंगल तुम्हारा। मनचाहा शिकार करो और रहो। ऐसे जैसे कोई आदमी से बातें करे।

बड़े सवेरे एक कोलभील दिखाई पड़ा, गुरु महाराज ने उससे कहा– क्यों, इस कोठरी में झाड़ू लगा दोगे? वह बोला– हौ महाराज! पत्तियों का झाड़ू बनाया और झाड़-पोंछ दिया। उनके पास तुम्बड़ी होती है, उसे तबकी भी कहते हैं, उसमें पानी भरकर लाया और सींच दिया, धो दिया। उस दिन से कोठरी के अन्दर शेर कभी नहीं गया। और जब तक जिया वहीं रहा। कभी छत के ऊपर पाँव लटकाकर बैठ जाये, कभी दाहिने, कभी बाँयें। रात को साढ़े दस-ग्यारह बजे करीब आ जाये और सामने गंगा किनारे बालू थी, उसमें लेट जाया करे। पाँच बजे तक वहीं विश्राम करे और पाँच बजे तो खड़े होकर एक छलांग में नदी पार कर जाये। जब चिक-चिक सुनाई पड़े तो महाराज बोले– हूँ, चला गया बेटा भोजन की खोज में, साँभर, बारहसिंगा टिक-टिक कर रहे हैं। वह शेर जब तक जिया वहीं रहा, कोई घटना नहीं, पालतू की तरह रहा।

महाराज के पास एकाध संत हो गये, धारकुण्डी महाराज उस समय सेवा में आ गये थे। जगह तो वहाँ थी नहीं, कुएँ की जगत थी, उसके ऊपर ब्रह्मचारी जी लेटा करें, और महाराज अपने आसन पर जहाँ भगवान ने कहा था 'यहाँ रहना है' उसी जगह आराम करें। रात में धूना जल रहा था, उसके पास एक जानवर गिरा धड़ाम्... और भागा। पीछे एक भारी भरकम जानवर गिरा और उसके पीछे भागा। महाराज उठकर बैठ गये। वह गुरु-चेला दोनों के बीच से भागा। वहाँ ब्रह्मचारी जी हैं और यहाँ गुरु महाराज, दोनों के बीच से भागा। ब्रह्मचारी स्वामी जी भी खड़े हो गये। महाराज ने कहा– क्यों रे सचिदानन्द! कौन आगे भागा, कौन पीछे? स्वामी जी बोले– महाराज! आगे बन्दर भाग रहा है, पीछे शेर... और वह पकड़ लिया। गुरु महाराज बोले– मार ससुरा के! मार!! साधु के आश्रम में हत्या कहाँ होती है रे! इसको जब शिकार ही करना है तो कहीं चला जाया करे, साधु के यहाँ शिकार कहाँ होता है, हत्या कहाँ होती है! मार, भगा, छुड़ा उसे। अब ब्रह्मचारी जी की हैसियत है कि शेर से छुड़ा ले! और ललकारते हुए महाराज के हाथ में एक पत्थर लग गया। अनायास लग गया, महाराज को ये भी भान न रहे कि ये शेर है, हम कौन हैं! खींचकर मारा तो पेट में लगा, धब्ब... आवाज आई, मुँह थोड़ा ढीला हुआ, बन्दर छूट गया, सन्न देना पेड़ पर चढ़ गया और शेर खड़ा होकर महाराज की और देखता रहा। कुछ देर खड़ा-खड़ा देखा और फिर चला गया। फिर वहाँ कभी कुछ पकड़ा ही नहीं।

ये तो बाद की घटना लेकिन वहाँ पर जब चौदह उपवास हो गये तब पेशाब में खून-सा दिखाई पड़ा, जैसे खून गिर रहा हो। गर्मी से पेशाब लाल हो गया, और कोई बात नहीं थी। महाराज कहें– होऽ, खून देखकर हमको थोड़ी सी करुणा आ गई, तब हमने भगवान से कहा– इष्टदेव बने बैठे हो, घोर जंगल में लाकर पटक दिया! न खाने का न पीने का, जब शरीर ही नहीं रहेगा तो भजन कौन करेगा! उस दिन भगवान नाराज हो गये, हल्के से रूखे हो गये, रूखा बदन करके भगवान ने कहा– ठीक है जब खाये का है तो कल से खाओ। जब खाने पर ही उतारु हो तो कल से खाओ।

महाराज को चिन्ता हो गयी कि भगवान ने ये रूखा बचन क्यों कहा कि जब खाना ही है तो कल से खाओ? आखिर भगवान हमसे चाहते क्या थे? जहाँ ये विचार आया, तब अनुभव में भगवान ने बताया– यदि इक्कीस दिन तुम न खाते तो तुम्हें जन्मभर खाना न खाना पड़ता। जैसे के तैसे बैठे रहते, चेहरे में जरा-सी भी शिकन न पैदा होती, उदासी न आती, वैसे ही दमकते रहते। तुम्हें प्राप्ति हो जाती, विभूतियाँ मिल जातीं, लोगों का बहुत अधिक मात्रा में कल्याण होता।

महाराज जब यह बात बतावें तो बाल पकड़कर उखाड़कर फेंक दें, बोलें– क्या बतावें, खूनवा देखकर बुद्धि में पत्थर पड़ गया, अन्यथा चौदह दिन बीत गया था, सात ही दिन तो बाकि था, वो भी बीत जाता। भगवान भी इतनी कड़ी परीक्षा लेते हैं। अरे, कह देते– बेटा, सात दिन और धैर्य धारण कर तो भगवान क का बिगड़ जात लेकिन इतनी कड़ी परीक्षा लेते हैं; अन्यथा बेटा जल्दी तुम लोग हमारा दर्शन न पाते।

तो वह बातचीत किससे करें? जिनके विषय में वह विरही हैं, दर्द है, उन्हीं से। तो– **'दरदवै बा हित-नात दरदवै पड़ोसिया'** पड़ोसी कौन? भगवान खुद, जिनके प्रति आपके हृदय में वेदना है। बात भी करना हो तो जंगल में है कौन? केवल प्रभु– **'दरदवै पड़ोसिया'**।

जिनगी के बनल बा दरदवै संघाती॥
दरद के दियना जरे दिन राती.....

हमारे जीवन का संगी-साथी-हितैषी दर्द ही है। और– **'बिना प्रेम रीझे नहीं नटवर नन्द किसोर।'**– प्रेम नहीं, विरह नहीं, वेदना नहीं तो भगवान नहीं खुश होते।

4- दरदवै बा कागज दरदवै सियाही,
दरदवै के कलम से लिखाइल बा पाती।
दरद के दियना जरे दिन राती.....

दर्द का ही कागज, दर्द की ही स्याही, दर्द की ही कलम से **'लिखाइल**

बा पाती'– विरह-वेदना का सन्देश हर रोज देते रहते हैं कि प्रभु अब कितनी दूर है?, अब कैसे होगा?, यह विघ्न कैसे जायें? तो भगवान् को सन्देशा भेजा जाता है। यह बाहर वाली चिट्ठी-पत्री वहाँ नहीं पहुँचती। आपमें विरह है तो आप रोज लिखते रहते हैं, और प्रभु रोज उत्तर देते रहते हैं।

महाराज का जब वहाँ आसन लग गया, पहले तो वहाँ डाकूओं के भय से सती अनुसुइया आश्रम में कोई जाता ही नहीं था। सती अनुसुइया में और कोई महात्मा रहता ही नहीं था, बर्बर डाकुओं का अड्डा था। सबसे तगड़े जो दो डाकू थे, उनका अड्डा वही अनुसुइया था। चौदहवें दिन उन लोगों ने महाराज को देख लिया तो एक बोला– यार, बाबा बइठ है। दूसरा बोला– बाबा बइठ है? चुचुरा पकड़कर कड़ील के फिटक दे पानी में। मतलब पखौरा पकड़कर घसीटकर फेंक दे, नदिया में डुबा दे। तो पहला साथी बोला– बाबा नीक है (बाबा अच्छे हैं)। तो दूसरा बोला– अच्छा और बुरा क्या होता है! जब बाबा है तो कोई न कोई इनके पास आयेगा, हम लोगों के अड्डे की पोल खुलेगी, हम लोग संकट में पड़ जायेंगे, भगा जल्दी। पहला बोला– अभी तो शान्त हैं, ठीक हैं। जब कभी ये उपद्रव करेंगे तो भगा देंगे या फिर मार-काटकर फेंक देंगे। आपस में परामर्श किया और चले गये। महाराज से मतलब नहीं।

दो महीना बाद टकरा गये। एक बार टकराये फिर सदा के लिए सुधर गये, चेला हो गये। महाराज के भक्तों में सर्वोपरि भक्त थे तो वे दो डाकू सरदार। अब रास्ता निरापद हो गया, अब उस रास्ते में कोई न लूटे। छब्बीस वर्ष महाराज का आसन रहा, उन छब्बीस वर्षों में गुरु महाराज के आश्रम के चारों तरफ, पाँच किलोमीटर इधर, उतना ही चारों तरफ कभी किसी का डाकुओं ने कुछ भी नहीं छीना। उन्होंने आपस में कहा कि परमहंस जी के क्षेत्र में कोई काण्ड मत करना, वह महापुरुष हैं, नहीं तो पकड़े जाओगे, मारे जाओगे।

महाराज के जीवन के अंतिम क्षणों में दो नये-नये डाकुओं ने महाराज के आश्रम से दो-ढ़ाई किलोमीटर दूर जंगल में एक डाकिया के साठ रुपये छुड़ा लिया। वह डाकिया भागता हुआ आया, बोला– महाराज! रुपया छुड़ा

लिया। वह यही कहीं से पीछे लग गये थे, यहीं-कहीं थे। महाराज बोले– हूँ, मोरेउ रास्ते में उपद्रव शुरु कर दिया सालों ने। तीसरे दिन वे पकड़े गये। उसका नाम था शायद कर्बी वाले बेटा पाण्डे का लड़का हीरा पाण्डे। फिर पन्द्रह दिन बाद उनका सरदार आया, धारकुण्डी स्वामी जी को साथ लेकर आया, बोला– महाराज! लड़कों को मालूम नहीं था, मैं उन्हें समझा नहीं पाया था, गलती हो गई महाराज जो यहाँ आपसे दो-ढ़ाई किलामीटर पर जो छुड़ा लिया साठ रुपया एक का। वह पकड़े गये गुरु महाराज! दया हो छूट जायें। मैं समझा नहीं पाया था इसलिए गलती हो गयी। तब महाराज बोले– करे, तू ई सचिदानन्द की तो सेवा करत है मोहि लुटवावत है! वह बोला– महाराज गलती हो गयी, भविष्य में कभी नहीं होई। दो-चार दिन बाद वे छूट भी गये। जब तक गुरु महाराज वहाँ पर रहे, कोई केस नहीं।

एक कुर्मी आया, घाट पर जैसे आप लोग चले गये, तो जंगल का सुहावना मौसम देखा, फुदकते हुए बन्दर, सामने बैठे हुए मृग, बीच में नदी... सामान जहाँ का तहाँ फेंककर सीन-सीनरी देखने में उलझ गये। तो एक लोटा रखा हुआ था। कुछ देर बाद जब लोटे का मालिक आया तो वहाँ लोटा नहीं था, वह बोला– महाराज! यही रखा था, अब नहीं है। महाराज कहें– हूँ, कौन ले गया रे? कोई आया था? इधर आया भी कोई नहीं। वह बोले– ये कुर्मी घूम रहा था। महाराज बोले– हूँ, वह जरुर लिया होगा।

वह लोग तो ढूँढ़-ढाँढ़कर चले गये, तीसरे दिन एक आदमी उसी लोटे में पूरा घी भरकर महाराज के पास रखकर प्रणाम करके चुपचाप भागा। महाराज कहें– पकड़-पकड़ सार के, कहाँ भागा जात है? करे, काहे भागत है रे? वह डरते-डरते आया। महाराज ने पूछा– ये लोटा काहे छोड़ दिया यहाँ पर? वह बोला– महाराज! मैं ही चुरा लिए रहा हूँ। महाराज ने कहा– हमें काहे चढ़ावत है, जिसका है उसको दे। वह बोला– उसको मैं कहाँ ढूँढूँ? महाराज बोले– आखिर तोके कैसे प्रेरणा हुई? वह बोला– रात में आप त्रिशूल लेकर छाती पर खड़े हो गये, आप बोले– खल! जल्दी लोटा लेकर चल नहीं तो आज आखिरी है। महाराज! मैं तो मौत के डर के मारे ले आया हूँ। महाराज कहें–

हो, मोर भगवान रक्षा करत हैं, पहरा देत हैं। कोई कुछ करेगा, उसके सब कर्म हो जाई।

चित्रकूट में वैष्णव महात्माओं का बोलबाला था। चित्रकूट में संन्यासी कोई नहीं। संन्यासियों को वैष्णव लोग रहने नहीं देते थे, बात ये थी इसलिए संन्यासी कोई नहीं। पहले वैष्णव और संन्यासी लड़ते थे कि शंकरजी बड़े या विष्णु भगवान बड़े?– झगड़ा इस बात का। बेटा वैष्णव महात्मा हो गया और बाप संन्यासी हो गया, आपस में लड़ रहे हैं, हैं सब आप ही लोग।

कुछ दिन बाद जब निरापद महात्मा लोग आश्रम आने-जाने लगे तो एक महात्मा जो वहीं पैदा हुए थे, वहीं के थे, बोले– ये हम लोगों का तीर्थ है। बीस वैष्णव महात्मा इकट्ठे होकर आवे, खन्ती लेकर, झोली में हाथ डाले, तिलक लगाये, मालाउ घुमावे, उटांग-पटांग बोले– परमहंसजी! आप जाइए, ये गद्दी वैष्णवों की है। डेढ़ सौ साल पूर्व यहाँ एक वैष्णव संत रहते थे, हमारे सम्प्रदाय के थे इसलिए गद्दी हमारी। आप जाइए, अन्यथा आपको काटकर नदिया में डुबा देंगे। महाराज कुछ न बोलें।

दो-चार बार हो गया तब महाराज ने भगवान से पूछा– प्रभो! भजन ही तो करना था, ये राग-द्वेष की जगह में लाकर क्यों पटक दियो हमको? हमें इस जगह से क्या लेना-देना! यहाँ पहाड़ है, पेड़ है, जंगल है, छः-छः टाँग के बड़े-बड़े मच्छर हैं, शेर है, चीता है, सर्प है... आखिर यहाँ है क्या? हम कौन-सा कब्जा करके बैठे हैं! भजन ही करना था तो ऐसी जगह में रखना चाहिए था जहाँ कोई किसी का न हो। लोग कहते हैं, हमारा है, खाली करिए, भाग जाइए नहीं तो नदी में डुबा देंगे। तब भगवान ने कहा– जब हम बैठाये हैं तो बैठे रहो, तुमसे क्या मतलब! महाराज निश्चिन्त हो गये।

दूसरे दिन करीब पचीस वैष्णव आये। जो खन्ती होती है, उसमें लोहे का टुकड़ा लगा रहता है उसका नाम है बैसाखी। तो सब छड़ी, डण्डा सब लेकर आये कि आज मारकर परमहंसजी को भगा ही देंगे। वे बोले– चलिए महाराज, यहाँ से हटिए।

महाराज ने डाँट दिया, बोले– भजन जाने न चिन्तन, कहते हो हमारी जगह है। इस त्रिशूल की नोंक बेटा पाताल में चली गयी, सृष्टि में न तुम लोगों के बस का है न कोई जन्मा है जो हमें यहाँ से हटा दे। भगिहो कि नहीं तोहरी धूर्तों की! वो पचीसों भाग गये, बोले– बाप रे, हम लोग सोचते थे बाबा जी सीधे हैं, ये तो बाघ हो गये। सब भाग गये। कोई विघ्न नहीं। और कई विघ्न आये और शान्त हो गये। गुरु महाराज कहें– जब भगवान कह दें तो तुम साधु हो तो हो, नहीं तो कभी नहीं।

जब कोई घटना घटे तो आखिर वह दरखास्त कहाँ दे? तो भगवान को। महाराज ने प्रार्थना की तो भगवान से। हृदय में विरह वेदना थी तब तो।

दरदवै बा कागज दरदवै सियाही,
दरदवै के कलम से लिखाइल बा पाती।
दरद के दियना जरे दिन राती.....

दर्द का कागज, पत्री लिख दिया, निवेदन कर दिया और भगवान से उत्तर भी मिल गया, अब सिंहवत् बैठ गये। इसलिए जो कुछ है, विरह वेदना है। माता मीरा इसी स्तर की संत थी। मीरा ने एक भजन में कहा–

बिरह व्यथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गयी करवट ऐन॥

विरह की व्यथा, प्राप्ति के लिए जो तड़प है, दर्द है, व्यथा है, किससे कहें! **'बह गयी करवट ऐन'**– एक ही करवट में आँसूओं से तकिया भींग गया, आँखों से अश्रु की धारा बह चली।

'कल न परत पल हरि मग जोहत'

हरि की राह देखते हुए एक पल भी चैन नहीं पड़ता कि अब आये तब आये। **'भई छमासी रैन'**– बढ़िया तावदार भोजन खाकर सोये तो एक ही करवट में सवेरा हो जाता, आँख भी नहीं खुलती, लेकिन विरह-वेदना जहाँ होती है वहाँ नींद कहाँ! **'एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती।'** (मानस, 2/211/1) मीरा कहती है– **'कल न परत पल'**– एक पल भी चैन नहीं पड़ता। हम जागरुक हैं तभी तो चैन नहीं पड़ता।

सो गये होते तो पता ही नहीं चलता। '**भई छमासी रैन**'– एक-एक रात्रि छः-छः महीने की लम्बी हो गयी।

मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुःख मेटन सुख देन॥

तो जो कुछ है, प्रेम में, वृत्ति में दर्द होना चाहिए, विरह होना चाहिए।

हँसि हँसि कंत न पाइयाँ, जिन्ह पाया तिन रोय।
हँसी खुशी जो पिउ मिले, कौन दुहागिन होय॥

हँसी-खुशी से भला अपने पति परमात्मा को कब किसने प्राप्त किया है!

5- दरदवै बा प्रभु मोर हियरे क वासी।
बिनु गुरु टूटे ना भरमवा क टाटी॥
दरद के दियना जरे दिन राती.....

दर्द ही हमारे हृदय की आँख है। जैसा प्रेम है उसी के अनुसार भगवान आपमें दृष्टि बनकर चलते रहेंगे लेकिन सद्गुरु उपलब्ध नहीं है तो भगवान हृदय से जागृत ही नहीं होंगे, मार्गदर्शन नहीं करेंगे।

हम तड़फते हैं यहाँ वहाँ तड़फता यार है।
एक तीरे इश्क है जो दो दिलों के पार है॥
जिन्हें है इश्क सादिक कहाँ फरियाद करते हैं।
लवों पर मुहरे खामोसी, दिलों में याद करते है॥

इसलिए साधक में भगवान को प्राप्त करने की आसरूपी घी और स्नेह, प्रेमरूपी बाती का दीपक हृदय में निरन्तर जलते रहना चाहिए। भगवान के दो-ढाई अक्षर के नाम ओम्, राम या शिव में से किसी एक का जाप करना चाहिए और सद्गुरु महाराज के स्वरूप को हृदय में धरकर श्रद्धा और समर्पण से उनकी सेवा करनी चाहिए।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय॥

अलख के अमल पर चढ़े योगियों को

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥ (गुरुगीता, 111)

मत्स्येंद्रनाथ भगवत्-स्वरूप में स्थित महापुरुष थे। बंगाल में एक त्रिया राज्य था। उस नगरी को श्राप था कि पुरुष नहीं जियेंगे, तो वहाँ औरतों का ही राज्य था। वहाँ की रानी तिलोत्तमा ने भगवान शिव की बहुत तपस्या किया कि हम लोगों का उद्धार कैसे होगा? तो आदेश मिला कि– किसी भगवत्-स्वरूप महापुरुष से तुम ब्याह कर लो, उसका लड़का उद्धार करेगा।

उस रानी को क्या पता कि भगवत्-स्वरूप महापुरुष कहाँ है। वह हनुमान जी की आराधना करने लगी। हनुमान जी ने कहा– देखो, मैं ढूँढ़ता हूँ। हनुमानजी तो सिद्ध पुरुष थे, देखा कि वह मत्स्येंद्रनाथ हैं। हनुमानजी ने मत्स्येंद्रनाथ से कहा– जाओ, त्रिया राज्य आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। उद्धार करके फिर चले आना, और क्या।

मत्स्येंद्रनाथ वहाँ गये। वहाँ औरतों का ही पहरा लगा रखा था। मत्स्येंद्रनाथ के ऊपर उनके जादू-टोने का, मंत्र– तंत्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनसे एक लड़का पैदा हुआ– मीननाथ। इधर नाथों की गद्दी में नौ नाथ थे। नौ नाथों की गद्दी लाइन से लगती थी और तब फिर निर्णय होता था कि भजन कैसा चल रहा है, किसका भजन चोटी पर है, कौन अधकुचला है।

मत्स्येंद्रनाथ की गद्दी खाली पड़ी थी। बाकी नाथ लोग बोले– वह तो भ्रष्ट हो गया, दूसरा नाथ चुनना पड़ेगा। मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ बोले– नहीं, हमारे गुरुदेव नष्ट हो ही नहीं सकते, किसी के उद्धार के लिए भले ही गए हों।

गोरखनाथजी वहाँ पर गुरु महाराज को छुड़ाने गये। त्रियाराज में बहुत कड़ा पहरा लगा रखा था कि मत्स्येंद्रनाथ को छुड़ाने गोरखनाथ जरूर आएगा। वह गोरखनाथ खुराफाती है, उसको रास्ते में नष्ट कर दो। तो गोरखनाथ को लुभाने के लिए बड़ा जाल फैलाया। सबको काटते हुए वे आगे पहुँच गए।

त्रियाराज में पुरुष का प्रवेश निषेध था लेकिन राज-दरबार में गाने-बजाने वाले, नर्तक-मण्डली आया-जाया करती थी। गोरखनाथ ने तबला बजानेवाले का रूप धारण कर लिया और पहुँच गया। मत्स्येंद्रनाथ सिंहासन पर बैठे थे, रानी भी बैठी थी। बजाना शुरू कर दिया। बस एक ही धुन बजाई– 'चेत मछंदर गोरख आया', 'चेत मछंदर गोरख आया'...। तो मछंदरनाथ ने कहा– बंद करो बाजा। यह जो तबला बजाने वाला है, इसको बुलाओ। अब गोरखनाथ जाकर चरणों में गिरे– गुरुदेव! यह वेश बनाकर हमें आना पड़ा। अब चलें, वहाँ पर बड़ा अपमान हो रहा है, सब कहते हैं– तुम्हारा गुरु नष्ट हो गया, ऐसा अपशब्द बोलते हैं। आप नष्ट तो हो ही नहीं सकते, किसी जीव का उद्धार करने ही आए हैं।

लेकिन मत्स्येन्द्रनाथ इतने दिन वहाँ रह चुके थे तो बहाना करने लगे– वह रानी, वह राज्य, वह लड़का मीननाथ। तब गोरखनाथ ने उपाय किया, मीननाथ को नहलाने ले गए और नदिया में डुबा दिया। सेवकों ने लाश लाकर सामने रखी तो मत्स्येन्द्रनाथ दहाड़ मारकर रोने लगे। तो गोरखनाथ बोले– आप तो सिद्ध पुरुष हैं, जिला दें, रो क्यों रहे हैं? आप तो पूर्ण पुरुष हैं। मत्स्येन्द्रनाथ बोले– अलख निरंजन! उठ मेरे नाम से!! लड़का नहीं उठा। गोरखनाथ ने कहा– गुरुदेव भगवान् के नाम से उठ। तो लड़का उठकर खड़ा हो गया। तब फिर मत्स्येन्द्रनाथ पीछे-पीछे चले। रानी ने बहुत जाल फैला रखे थे, सब काटते हुए त्रियाराज से बाहर निकल आये।

रास्ते में मत्स्येन्द्रनाथ बोले– मैं जरा नित्यक्रिया से निवृत्त होने जाता हूँ, गोरखनाथ! तुम झोली का ध्यान रखना। गोरखनाथ चार-छः बार सुना, सोचा– झोली में क्या है? झोली खोलकर देखा तो उसमें सोने की दस-बारह सिल्लियाँ रखी थीं। गोरखनाथ बोले– ओह, यह है। इसलिए इसका ख्याल

रखने के लिए कह रहे हैं। उन्होंने झोली उठाकर कुएँ में फेंक दिया।

अब मत्स्येन्द्रनाथ वापस आये तो बोले– हमारी झोली, सोनेवाली सिल्लियाँ कहाँ गईं? गोरखनाथ! तू नालायक है, तुमने हमारा सर्वनाश कर दिया, जिन्दगी भर की कमाई चौपट कर दी। गोरखनाथ बोले– अरे, आप सिद्धपुरुष हैं, अपने स्वरूप को सँभाले। मत्स्येन्द्रनाथ बोले– लाओ हमारा सोना...। गोरखनाथ ने चट्टान पर खड़े होकर पेशाब कर दिया तो चट्टान ही सोने की हो गई। तब मच्छेन्द्रनाथ बोले– ठीक, तुम चलो, मैं आ रहा हूँ। यह तुम्हारी परीक्षा थी।

मत्स्येन्द्रनाथ अपनी गद्दी में बैठे, गोरखनाथ अपनी गद्दी में बैठे। शिष्य अच्छे होते हैं तो गुरु को भी बचा लेते हैं। इन महापुरुषों के शिष्य गरीब-अमीर सब थे लेकिन दो-चार राजा अच्छे महात्मा हुए।

चक्रवर्ती सम्राट भर्तृहरि। उनकी दो सौ रानियाँ थीं। एक रानी और पा गए। वह एकदम साफ-सुथरी थी। जब से वह रानी आई, भर्तृहरि महल से बाहर निकले ही नहीं। उनके सभागार में सूना पड़ गया, आसन-टेबल-कुर्सी पर गर्दा छा गया। जब राजा है ही नहीं, वह बाहर ही नहीं निकले तो सीमाओं पर विवाद छिड़ गया।

इधर एक दूसरी घटना घट गई। एक ब्राह्मण देवता ने भोलेनाथ की कठोर तपस्या की और भोलेनाथ ने खुश होकर उस ब्राह्मण को एक फल दे दिया– इस फल को खा लो, पण्डित! तुम अमर हो जाओगे। अब 'जय हो भोलेनाथ की' कहकर उसने दण्डवत् किया और भोलेनाथ हो गए अदृश्य।

अब पण्डित नहा-धोकर जब खाने बैठे तो विचार आया– मैं यदि अमर हो जाऊँगा तो क्या करूँगा, भीख ही तो माँगूँगा। ब्राह्मण के लिए तो भिक्षावृत्ति ही है, और तो कुछ नहीं। राजा धर्मात्मा है, यदि वह खा लेगा तो अमर हो जाएगा, देश का कल्याण होगा।

पण्डित भर्तृहरि के पास गया और बोला– राजन्! इसको खा लें, आप अमर हो जायेंगे। फल को हाथ में लेते ही चौदह भाषाओं के विद्वान् भर्तृहरि

ने उस फल में खट्-खट् चार नाखून गड़ा दिया। कोई वस्तु सामने आए तो वे अपना सिग्नेचर (चिन्हित) कर दिया करते थे।

अब भर्तृहरि ने सोचा– यदि मैं अमर हो जाऊँगा और यह पिंगला जुलजुल, बुढ़िया हो जायेगी तो मैं इसको देखे बिना कैसे जिऊँगा? राजा ने फल को रानी पिंगला को देते हुए कहा– लो प्रिये, तुम खा लो, मैं खटिया में पड़ा-पड़ा तुम्हें देखकर जी लूँगा। पिंगला ने वह फल उठाकर घोड़ों के सरदार को दे दिया, सोचा कि हमारी सेवा तो यह सरदार कर रहा है। यह वृद्ध हो जाएगा तो हमारा काम कैसे चलेगा।

महारानियों का मुँह लगा घोड़े का सईस, वह भी बड़ा शौकीन था। जो नगर की सबसे बढ़िया नर्तकी अप्सरा रही, उसके यहाँ आया-जाया करे। उसने वह फल ले जाकर उस नर्तकी को दे दिया– लो प्रिये! तुम सदैव फुदकती रहो, तुम कभी वृद्ध नहीं होगी। जो उपहार में देता हूँ, महाराजा भी नहीं दे सकते। और ठाठ से झूमता हुआ वापस चला गया।

पतुरिया बड़ी धर्मात्मा थी। उसने सोचा– दुर्लभ मानव-तन मिला है और इस क्षुद्र पेट के लिए दिनभर ता-ता-धिन्ना–2.... यह कोई जिंदगी है। संसार भर के जितने सिरफिरे लोग हैं, पीकर आते हैं, बाई जी जरा ठुमका लगाइये, जरा मुस्कराकर सुनाइए। राजा धर्मात्मा है, उसको दे दूँ तो देश का कल्याण होगा। मैं अमर भी हो जाऊँगी तो कुचालियों का मन ही तो बहलाऊँगी.... और क्या करूँगी।

पतुरिया ने वह फल ले जाकर राजा को भेंट किया तो राजा चौंक गया। राजा बोले– पिंगला तुम्हारी बहन है क्या? वह बोली– नहीं राजन्! मैं आपकी नगरवधू हूँ। यह फल ले लें आप। इसे खा लीजिए, आप अमर हो जायेंगे। राजा बोले– तुम कहाँ पाई? वह बोली– हमारे पास अमीर, राजा-महाराजा सभी आते रहते हैं। यह फल आपके घोड़े के सईस (सरदार) ने दिया है।

राज ने सरदार को बुलाया, उससे पूछा– तुम कहाँ पाये? सरदार ने सोचा– झूठ बोलता हूँ तब भी फाँसी तो होना ही है, सच बोलकर फाँसी ले लूँ तो वीरगति पाऊँगा, इसलिए बोला– महारानी साहब ने दिया है।

भर्तृहरि महारानी से पहले ही पूछ चुका था कि वह फल क्या हुआ? तो वह बोली– खा लिया, देख नहीं रहे हो, दो दिन से चेहरे में चमक आ गई है। अरे, थोड़ा पाउडर और छिड़क लिया था। भर्तृहरि को बहुत क्रोध आया, बड़ी घृणा पैदा हुई। जिसको देखे बिना वह जीना नहीं चाहता था, वह बाघिन की तरह फाड़ खाने को तैयार दिखाई देने लगी। घोड़े पर चढ़ा, जंगल में निकल गया। एक हिरन को बाण मारा, हिरन गिर पड़ा। गिरते-गिरते हिरन ने कहा– मार तो रहा है दुष्ट, किसी संत को देना। वह मेरी छाल बिछाएंगे, भजन करेंगे तो मेरा भी कल्याण होगा।

अब भर्तृहरि ने मृगे की लाश को लाद लिया और आगे बढ़ गया। जंगल में संत की कुटीर ढूँढ़ने लगा। संत जंगल में ही रहते थे, आज भी जंगल में ही रहते हैं। सौभाग्य से गोरखनाथ की कुटिया मिल गई। कुटिया के ठीक सामने, आश्रम परिसर में मृगे की लाश ले जाकर पटक दिया। गोरखनाथ बिगड़े– कौन है तू सिरफिरा? संतों की कुटिया में लाश गिराता है।

राजा बोले– महाराज! बहुत दया लगती है तो जिंदा कर दो। गोरखनाथ ने देखा, मृगे के शरीर में अभी गर्मी थी। धूने की विभूति धूने से निकाला, उसके ऊपर छिड़क दिया, मुँह खोलकर मुँह में डाल दिया। अब वह मृग तिलमिलाकर उठा और झाड़ी की आड़ में चला गया।

तब भर्तृहरि ने सोचा– यह तो महापुरुष हैं; और सादर साष्टांग दण्डवत् किया, बोले– भगवन्! मुझे शरण में रख लें, मैं जन्मभर आपकी सेवा करुँगा, आदेश का पालन करूँगा, भजन करूँगा। गोरखनाथ बोले– पहले बता, तू है कौन? वह बोले– यहाँ का महाराजा भर्तृहरि। गोरखनाथ बोले– अरे, जब से एक नई रानी आयी है, चार-छः महीने से महल से बाहर नहीं निकला, नीचे नहीं उतरा, वही है तू? राजा बोले– हाँ, मैं वही हूँ। गोरखनाथ बोले– कहाँ गया वह तुम्हारा प्रेम? तो अमर फल वाली पूरी घटना बतायी कि ऐसी-ऐसी घटना घट गई।

गोरखनाथ बोले– ओह, ऐसा हो गया, तुम जरूर साधु हो जाओ, लो पहनो कपड़ा। कानों में कुण्डल डाल दिया, कमर में नाथों वाला बेल्ट बाँध

दिया, एक खप्पर हाथ में पकड़ा दिया, बोले– जाओ, उसे देवी से भिक्षा मांगकर लाओ।

जब भिक्षा मांगा तो पिंगला खड़ी सूख गई, बोली– अरे, यह तो साधु हो गए। पति भी गया, सुहाग भी गया, बेइज्जती का लांछन, कलंक लेकर मैं कैसे जिऊँगी।

इस पर पीछे वालों ने गाना बना लिया–

भिक्षा दे दे मैया पिंगला, योगी करे पुकार, मैया पिंगला।

पिंगला मैया! भिक्षा दे दे, योगी पुकार रहा है। पिंगला बोली–

जोग उतारो राजा भर्तृहरि, रानी करे पुकार, राजा भर्तृहरि।

रानी ने आग्रह किया कि–

महलों में राजा योग रमाओ, जिऊँगी दिन चार, राजा भर्तृहरि।

राजा ने कहा–

जोगी है जंगल के वासी, क्या घर-संसार से काम, मैया पिंगला।

रानी ने अंत में देखा, यह नहीं रुकने वाले तो हीरे-मोती ले आई। राजा बोले– नहीं, दो मुट्ठी आटा। तब रानी गई, आटा लाई, भिक्षा दे भी दिया और राजाओं के यहाँ इमरजेंसी आग जलती रहती थी, आग में कूद गई। जहाँ आग में कूदी तो भर्तृहरि का पुराना मोह जग गया। भर्तृहरि खप्पर फेंककर दौड़ा– पिंगला, पिंगला... पर सुर्र-से आग की लपेट में सिमट गई।

अब आँखों में आँसू लिए भर्तृहरि खाली खप्पर लेकर गोरखनाथ के पास पहुँचे, रोते-रोते बोले– पिंगला... पिंगला...। गोरखनाथ बोले– अरे, मैंने तुमको 'अलख निरंजन', 'अलख निरंजन' मंत्र दिया था, यह नया मंत्र 'पिंगला-पिंगला' कहाँ से सीख लिया? राजा बोले– अरे, वह मर गई। ऐसे-ऐसे घटना घट गई। गोरखनाथ बोले– ठीक, तुम जाओ, जहाँ मर गई थी, एक खप्पर उसकी राख लेकर आओ।

अब भर्तृहरि सपाट दौड़ा और राख लेकर सपाट वापस पहुँचा। वह इस लालच में था कि मरा मृगा जिला दिया, शायद पिंगला को भी जिला दे।

और भला वह क्यों दौड़ता। राख लाकर रखा तो गोरखनाथ बोले– डाल पानी इस खप्पर में और घोल बनाकर पूरे शरीर में लपेट ले, कोई जगह खाली ना रहे। भर्तृहरि ने राख लगा लिया तो गोरखनाथ बोले– अब कर भजन। अब तुम्हारे भजन से पहले उसे देवी का उद्धार होगा, फिर तुम्हारा।

अब मोह का अंतिम सूत्र था, वह भी टूट गया। फिर भर्तृहरि भजन में लग गए। मोह-माया नहीं रह गई, वह परम त्यागी हुए। महलों में रहने वाले भर्तृहरि... क्षुद्र कुटिया उन्हें मोहित क्या करती जो कुटिया बनाने में समय नष्ट करते। आज भी भर्तृहरि की गुफायें पूरे भारत में पाई जाती है। भर्तृहरि उज्जैन के महाराजा थे। उस समय उज्जैन राजधानी थी और चुनार में भी भर्तृहरि की गुफा थी, और यह उनका किला था।

अलख अर्थात् परमात्मा का नाम। जैसे हरिओम्, ब्रह्म, शिव, ऐसे ही भगवान के सहस्त्रनामों में से एक नाम अलख। वह परमात्मा मन से परे, इन्द्रियों से परे, बुद्धि से परे है। उसे आँखें देख नहीं सकती, बुद्धि निर्णय नहीं ले सकती, मन कल्पना नहीं कर सकता। मनुष्य के पास जो यंत्र है, वह उनकी पकड़ से परे है। इसीलिए तो इन्द्रियों का दमन, मन का शमन किया जाता है।

वह अनुभवगम्य है। इतना चिन्तन करो कि भगवान आपमें आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हो जाये, मार्गदर्शन करने लगे, आपमें स्वयं दृष्टि बनकर खड़े हो जाए, तभी वह समझ में आता है, नहीं तो नहीं। इसका नाम अनुभव है। भव से अतीत करने वाली विशेष जागृति का नाम अनुभव है।

एक बार भर्तृहरि सड़क के किनारे बैठे थे, दिखाई पड़ा कि सड़क में एक हीरा पड़ा है। वह राजा-महाराजा रह चुके थे, हीरे की तो पहचान थी ही, विचार किया– लगता है, किसी भले आदमी का गिर गया है।

इतने में दो घुड़सवार, एक इधर से एक उधर से आए, दोनों घोड़े से कूदे और हीरे के पास तलवार की नोंक टिका दी। पहला बोला– माल मेरा, पहले मैंने देखा। दूसरे ने कहा– नहीं, हमने इसकी चमक बहुत दूर से पहचान

ली थी। पहले तकझक किया, फिर बोले– 'वीरभोग्या वसुंधरा'– रतन और पृथ्वी वीरों के उपभोग की वस्तु है। लड़ो, जो जीते, वही ले ले।

तलवारें घूम गईं, आधा घण्टा धुआँधार लड़े और दोनों मर गए। माल धरा का धरा रह गया, दावेदार चल बसे।

भर्तृहरि को बड़ा संतोष हुआ– जो राज छूटा है, इतना ही तो था, और क्या। आगे गए तो उन्हीं का सगा भांजा राजा गोपीचंद, उनसे भेंट हो गयी। गोपीचंद के घर में भी एक घटना घटित हो गई इसलिए साधु हो गये थे। दोनों साथ ही रहने लगे। जंगल के किनारे घास-फूस की एक कुटिया बन गई, भर्तृहरि उसमें रहें, गोपीचन्द घोर जंगल में चट्टान पर रहा करें।

भर्तृहरि और गोपीचन्द दोनों भिक्षा करने एक साथ जाया करें। जो भिक्षा मिले, गोपीचंद तो सब खाकर हाथ झाड़ ले। भर्तृहरि को जो भिक्षा मिले, उसमें से वह दो रोटी बचा के रख दें। शाम भर में कोई न कोई भूला-भटका आवे, उसको देकर पानी पिला दें। यह दोनों का नियम था।

भिक्षा बराबर ही मिलती थी, कम-ज्यादा नहीं। एक दिन एक ब्राह्मण आया। वह जंगल में चार दिन से भटका हुआ था, उसने सोचा– बैठ जाऊँगा तो मौत छोड़कर कुछ नहीं है, चलता रहूँ तो शायद कहीं पहुँच जाऊँ। वह चलता ही रह गया, इतने में गोपीचंद पर दृष्टि पड़ी। ब्राह्मण बोला– अरे महाराज! प्राण संकट में है, अब-तब लगा है, कृपया थोड़ा पानी पिला दें, कुछ खाने को दें। गोपीचन्द बोले– मैं विरक्त हूँ, आगे एक गृहस्थ रहता है, चले जाओ। ब्राह्मण बोला– अरे, दस कदम भी चलने की हिम्मत नहीं रह गई है। गोपीचन्द बोले– तुम्हें ज्यादा चलना भी नहीं है, बस पचास कदम पर....।

अब मरता क्या नहीं करता, पण्डित ने साहस बटोरा और आगे बढ़ा तो भर्तृहरि की निगाह पड़ गई। भर्तृहरि ने आगे बढ़कर ब्राह्मण को सँभाला, पानी पिलाया, वही दो टिक्कड़ खाने को दिये। टिक्कड़ खाया, फिर पानी पिया, चेत हुआ तो पण्डित बोले– भगवन्! पीछे जो संत विराजमान है, उन्होंने

कहा– आगे एक गृहस्थ रहता है पर आप तो महापुरुष है, यह गृहस्थ कहाँ रहता है?

भर्तृहरि बोले– भैया, हम दोनों ही यहाँ निवास करते हैं। हमें भिक्षा तो बराबर ही मिलती है, पर मैं दो रोटी बचा लेता हूँ, झोपड़ी में रख लेता हूँ। कोई भूखा-प्यासा पहुँच आवे तो उसको दे देता हूँ, नहीं आया तो शाम को खाकर पानी पी लेता हूँ। मैं यह दो रोटी रखता हूँ इसलिए मैं गृहस्थ हूँ, वह नहीं रखता इसलिए विरक्त है – बस यही फर्क है।

पण्डित बोले– महाराज! आप धन्य हैं। यदि आज आपकी यह दो रोटी नहीं मिली होती तो हम साफ ही रहे।

साधु चार प्रकार के होते हैं– पहला 1. बोधक – निराधार विचरण करने वाला। फिर बाद में 2. कुटीचक – कुटिया बनाकर रहने वाले, 3. हंस, और 4. परमहंस।

कुटिया न बनावे तब तक कोई बात नहीं, वह विरक्त है, कोई जिम्मेवारी नहीं। कुटी बना ही लिया तो कुटीचक का फर्ज होता है– आगंतुक अभ्यंतुक भूखे-प्यासे को दो रोटी दे।

हंस वे कहलाते हैं–

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥ (मानस, 1/6)

विधाता का प्रपंच गुण-दोष से भरा हुआ है। वे संत हंस होते हैं जो ईश्वरीय गुणरूपी दूध ग्रहण कर लेते हैं और प्रकृति के विकाररूपी वारी का परित्याग कर देते हैं। वारी माने पानी। विकाररूपी जल को त्याग देते हैं, ईश्वरीय गुणरूपी दूध को ग्रहण कर लेते हैं। यह नीर-क्षीर-विवेक की जब क्षमता आ जाती है तो हंस कहलाते हैं। कागभुसुण्डि आश्रम में हंस ही रहा करते थे।

और परमहंस.... फिर इसी ईश्वरीय गुणों के सहारे माया वाला एक भी प्रपंच ग्रहण नहीं करता, जब करता है, ईश्वरीय गुणरूपी दूध ग्रहण करता है।

क्रमशः चलते हुए चित्त के निरोध और विलयकाल में उस परमतत्त्व परमात्मा से संयुक्त हो गये तो वे परमहंस कहलाते हैं। परम से संयुक्त है, परम में स्थिति वाले हैं तो परमहंस। हंस, परमहंस, विरक्त और कुटिचक – ये चार प्रकार से संत लोग दुनिया में विचरण करते हैं। तो भर्तृहरि गृहस्थ और गोपीचन्द विरक्त। एक भजन प्रस्तुत है–

फिकर सबको खा गई, फिकर सबकी पीर।
फिकर फाड़ फांकी करें, ताकर नाम फकीर।।

फिकर – चिन्ता – सबको खा जाती है–

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा।।
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया।।

(मानस, 7/70/3-4)

फिकर सबको घोलकर पी गई। '**फिकर की जो फांकी करे, ताकर नाम फकीर।**'– उसकी फाँकी कर जाए, हजम कर जाए तो उसका नाम फकीर। तो,

1. **अलख के अमल पर चढ़े योगियों को,**
   जणाये तरण सम जगत बादशाही।
   अमल की वो यारो खुमारी न उतरे,
   अदल शहंशाही को परवाह न काही।।
2. **है तृष्णा भिखारी जो मिले शहंशाही,**
   न टूटे वहाँ तक जहाँ बादशाही।
   है शाहों की शाही अदल फकीराई,
   सर्व त्याग से जिसने तृष्णा मिटाई।।
3. **कदम पर है झुकती खलक सारी आई,**
   झुके राव राणा बेतूल बादशाही।
   जगत जहाँगीरी है फिकर जिसने खाई,
   फनां के मुकामों से आशा उठाई।।

4. इधर बादशाही उधर बादशाही,
मिटे खौफ यारो फिरे मुफ्लिसाई।
न आना न जाना मिटी झंझटाई,
फकीरी है ऐसी अदल शहंशाही।।

5. सभी हैं उसी में और वो है सभी में,
नजर एक बिन नहीं दूजे समाई।
कहे लाल जिसने है मस्ती को पाई,
अमर तख्त पर गादी अपनी बिछाई।।

भगवान अलख हैं, अचिन्त्य हैं, अगोचर हैं। भगवान कृष्ण कहते हैं– अर्जुन!,

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। (गीता, 2/24)

आत्मा अवध्य है, अशोक्य है। उसे वायु नहीं सुखा सकता, अग्नि नहीं जला सकती, आकाश विलय नहीं कर सकता। व्यक्त माने दिखाई पड़े, अव्यक्त माने न दिखाई पड़े। अव्यक्त है, शाश्वत और सनातन पुरुष है। मन और इन्द्रियों की तरंगों से अतीत है, अचिन्त्य है, अगोचर है। मृत्यु से परे वह अमृत तत्त्व है। तो जो मन और इन्द्रियों से परे है तो उसे हम देखेंगे कैसे? इसलिए भगवान का एक नाम अलख। तो–

'अलख के अमल पर'– अलख निरंजन, अविनाशी का नशा जिसको हो गया, अमल माने नशा... **'चढ़े जोगियो को'**– उस नशे की खुमारी पर जो योगी चढ़ गया, जिन्हें भजन का नशा हो गया, उनको दुनिया कैसी दिखाई देती है?

'जणाये तरण सम जगत बादशाही।'

उसको पूरी दुनिया **'जणाये तरण सम'**– सब तरने लायक हैं, इसमें कोई अभागा नहीं। जगत भगवान की बादशाही है, सबके हृदय में भगवान का वास है। **'जणाये तरण सम'**– सब तरने लायक हैं, केवल विधि नहीं

मालूम है। वह नशा जिसको हो जाता है,

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।

(मानस, 2/130/7)

न स्वर्ग, स्वर्ग के रूप में रह गया जिसकी हम कामना करें, और न नर्क, नर्क के रूप में रह गया जिससे हम भयभीत हों। जहाँ भी दृष्टि पड़ी, आराध्य देव के स्वरूप को खड़ा पाया। **'जणाये तरण सम'**– सब पार होने लायक हैं। यह जगत भगवान की ही बादशाहत है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! सृष्टि के सारे पापियों से तू अधिक पाप करने वाला है तब भी गीतोक्त ज्ञानरूपी नौका द्वारा निःसन्देह पार हो जाएगा। भूल जाओ कि हम पापी हैं। जिस पल गीतोक्त राह पर कदम रखा, श्वास के रहते-रहते बीजारोपण हो गया, श्रद्धा स्थिर हो गयी, ओम् जपते बन गया, बीजारोपण हो गया तो अब माया में कोई वज्रापात नहीं कि उसे नष्ट कर दे। अर्जुन! अगले जन्म में जहाँ साधना छूटी थी, उस बुद्धि-संयोग को प्राप्त कर लेता है, और कुछेक जन्म के अंतराल से वहाँ पहुँच जाता है जिसका नाम परम गति है, परम धाम है, मेरा निज स्वरूप है, सदा रहने वाली शांति है, सदा रहने वाला जीवन है। तो इसलिए कोई पापी नहीं, **'जणाये तरण सम'**– सब तरने लायक हैं, तरे हुए जैसे हैं। **'जगत बादशाही'**– जगत भगवान का एक दरबार जैसा है।

अमल की वो यारो खुमारी न उतरे,
अदल शहंशाही को परवाह न काही।।

अमल माने नशा। **'अमल की वो यारो खुमारी न उतरे'**– उसकी खुमारी, नशे की गुरुता न उतरे। वह प्राप्तिपर्यन्त उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। **'अदल शहंशाही को परवाह न काही।'**– अखण्ड शाहंशाही है, उसको किसी चीज की परवाह नहीं क्योंकि उसकी सुरक्षा का भार उन प्रभु के हाथ में होती है।

हमारे और भगवान के बीच रुकावट क्या है? तृष्णा।

है तृष्णा भिखारी जो मिले शहंशाही,
न टूटे वहाँ तक जहाँ बादशाही।

तृष्णा ने हमको भिखारी बना रखा है। हम भिखारी नहीं है। तृष्णा यानी यह चाहिए, वह चाहिए। तृष्णा, मांग कभी किसी की पूरी नहीं हुई। रावण ने त्रिलोक वश में कर लिया लेकिन 'कल राम का वध करूँगा, परसों सीता से ब्याह करूँगा'– यह इच्छा लेकर मर गया। सोने के हिमालय जैसे हजार पिण्ड दे दो तब भी आदमी भूखा का भूखा। तृष्णा तो मन की एक तरंग है। जो कोई उपलब्धि हो गयी वो तो हमारा स्तर हो गया, फिर तृष्णा आगे की सोचती है। हमारे भिखारी होने का, कभी इच्छा पूरी न होने का कारण केवल तृष्णा है।

'है तृष्णा भिखारी जो मिले शहंशाही'– जहाँ भगवान का दरबार मिलता है वहाँ तक है यह तृष्णा। **'न टूटे वहाँ तक जहाँ बादशाही।'**– वहाँ तक इस तृष्णा का क्रम नहीं टूटता जहाँ तक कि भगवान का दर्शन, स्पर्श और स्थिति न मिल जाए। तब तक यह किसी न किसी रूप में पीछा करती है। साधक लापरवाह हो गया तो यह कामयाब हो जाएगी।

है शाहों की शाही अदल फकीराई,
सर्व त्याग से जिसने तृष्णा मिटाई।।

'है शाहों की शाही अदल फकीराई'– शाहों के शाह, मालिकों के मालिक हैं, यह फकीराई अखंड है। **'सर्व त्याग से जिसने तृष्णा मिटाई।'**– सर्वस्व के त्याग से जिसने तृष्णा को जीत लिया, वह शाहों का शाह है। उसकी फकीराई अखंड है, सर्वस्व त्याग से जिसने तृष्णा को मिटा दिया।

अलख के अमल पर चढ़े योगियों को,
जणाये तरण सम जगत बादशाही।

अलख है, निरंजन है, अखण्ड है, असीम है, इन्द्रियों से परे, बुद्धि से परे उन परम प्रभु का अमल जिसे नशा सवार हो गया, उस नशे की खुमारी पर चढ़े योगियों को **'जणाये तरण सम जगत बादशाही।'**– सम्पूर्ण जगत

में जहाँ भी दृष्टि पड़ी, सब तरने लायक हैं, कोई अभागा नहीं। उन महापुरुषों की दृष्टि में सब अधिकारी हैं। जगत् भगवान का एक बहुत बादशाहत है।

जिसने तृष्णा को जीत लिया, उसकी रहनी कैसी?, उन महापुरुष का स्वरूप, दरबार कैसा होता है? तो,

कदम पर है झुकती खलक सारी आई,
झुके राव राणा बेतूल बादशाही।

उसके चरणों में झुकती है **'खलक सारी आई'**– खलक माने दुनिया... सारी दुनिया उनके चरणों में झुकती है। ऐसा नहीं है कि राव-राणा छूट जाए, **'झुके राव राणा बेतूल बादशाही।'**– राव-राणा भी वहाँ झुकते हैं। ये बैतूल बादशाह हैं, जगत की नाप-तौल से ऊपर हैं।

जगत जहाँगीरी है फिकर जिसने खाई,
फनां के मुकामों से आशा उठाई।।

उसके लिए जगत, पूरा संसार एक जागीरी है जिसने फिकर को खा लिया– **'फिकर जिसने खाई'**।

कबीर कहते हैं–

भली बेचारी मधुकरी, नाना विधि को नाज।
काहु का दावा नहीं, बड़ा देश बड़ राज।।

नाना प्रकार का अनाज, किसी का दावा है ही नहीं। अरे, एक टुकड़ा दे दिया, कौन दावा! **'बड़ा देश बड़ राज'**– जहाँ तक चले जाओ, सब जगह फ्री (स्वतंत्र)। तो– **'जगत जहाँगीरी है'**– जगत ही जागीरदारी है जिसने फिकर को खा लिया, चिन्ता को खा लिया।

चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया।।

(मानस, 7/70/4)

जिसने इस चिंता को खा लिया, फिकर को खा लिया, **'फनां के मुकामों से आशा उठाई।'**– फना माने विलय होना....

देखते देखते क्या से क्या हो गया।
गर कतरा दरिया में गिरा तो फना हो गया॥

आकाश से एक बूँद दरिया में गिरी तो फिर वह खोजने से मिलेगी? वह तो दरिया में दरिया हो गई, मिट गई। ऐसे ही भजन करते-करते,

देखते-देखते क्या से क्या हो गया।
अगर खुदी गुम हुई तो खुदा हो गया॥

'खुदी'– माया ही बीच में रुकावट थी। जब वह गुम हो गई तो खुदा, भगवान का स्वरूप ही तो शेष बचा रहा। इसका नाम है फना। फना माने हम मिट जाए, भगवान रह जाए। हम दर्शन, स्पर्श और प्रवेश पा जायं।

पहले यह फिकर, आशा मिटती ही नहीं। **'फनां के मुकामों से आशा उठाई।'** फनां के मकान पर जहाँ पहुँचा तो आशा सदा के लिए मिट जाती है। आस करे कौन? चिंता करे कौन? वह तो उसमें मिल गया।

अर्जुन! इस कर्म को किए बिना ना सृष्टि में न पूर्व में किसी ने पाया है, न भविष्य में कोई प्राप्त कर सकेगा किन्तु कर्मों के परिणाम में आत्मा विदित है, आत्मतृप्त है और आत्मस्थित है, उस पुरुष के लिए किंचित् भी कर्तव्य शेष नहीं है, प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है। अब कर्म करने से न लाभ है, न छोड़ने से क्षति है। कर्म माने आराधना, चिन्तन करेगा भी तो सुनेगा कौन, जब आगे कोई भगवान नाम की सत्ता बची ही नहीं। फिर भी यह महापुरुष लोकहित के लिए कर्म में भली प्रकार बरतते हैं। सृष्टि का नियम है– महापुरुष जो प्रमाण कर जाता है, पीछे की पीढ़ियाँ उसी का अनुसरण किया करती हैं।

श्रीकृष्ण ने पहले एक आत्मतृप्त, आत्मस्थित महापुरुष की रहनी का चित्रण किया, फिर उनसे समानता करते हुए अपना परिचय दिया– अर्जुन! मुझे भी प्राप्त होने योग्य वस्तु किंचित् भी अप्राप्त नहीं है। अब कर्म करने से मुझे न लाभ है, न छोड़ने से कोई क्षति। मैं भी लोकहित के लिए भली प्रकार क्रम में बरतता हूँ। मैं यदि सावधान होकर न बरतूँ तो समाज बरतने लग

जायेगा, समाज वर्णसंकर हो जायेगा, समाज भ्रष्ट हो जायेगा और मैं इस प्रजा का हनन करने वाला हत्यारा बनूँगा।

आत्मा को परमात्म-पथ से भटकना हत्या है। इस आत्मा का शुद्ध वर्ण है परमात्मा। परमात्म-पथ में अग्रसर है तो अपने वर्ण की ओर, अपने स्वरूप की ओर गति करने वाला है। उसमें भ्रम पैदा हो गया, प्रकृति के नश्वर कलेवरों में वह भटक गया तो वह वर्णसंकर।

स्त्रियों के दूषित होने से वर्णसंकर तो सुना गया था, लेकिन गीता के अनुसार स्वरूप में स्थित आत्मतृप्त, आत्मस्थित महापुरुष भली प्रकार स्वयं कर्म करते हुए न बरताये, कराये तो समाज वर्णसंकर हो जायेगा। आत्मा का शुद्ध वर्ण परमात्मा है।

हंसा तू सुवरण वरण, हल्की तेरी चाल।
एक कला के बिछुड़े, बिकल फिरे बेहाल॥

इसलिए जब '**फना**'– विलय हो गया, आत्मदर्शन, स्पर्श और प्रवेश मिल गया, स्थिति मिल गयी, हम खो गये। इसका नाम फना है।

'**जगत जहाँगीरी है फिकर जिसने खाई**'– जिसने फिकर को मिटा दिया। लेकिन फिकर कब मिटेगी? जब तुम दर्शन, स्पर्श और प्रवेश पा जाओगे। '**फनां के मुकामों से आशा उठाई।**'– उस मुकाम पर आशा पिण्ड छोड़ती है। यहाँ दुनिया में भी तुम बेदाग हो, भगवान के वहाँ भी यही स्वरूप रहेगा।

4. इधर बादशाही उधर बादशाही,
मिटे खौफ यारो फिरे मुफ्लिसाई।

यहाँ भी तुम्हारी बादशाहत, स्वामीपना विद्यमान रहेगा, भगवान के यहाँ भी स्वामीपना, धाम विद्यमान रहेगा, वहाँ भी वही रहोगे। खौफ माने भय। आवागमन का भय सदा के लिए मिट जायेगा- '**मिटे खौफ यारो फिरे मुफ्लिसाही।**' तब जब भगवान आदेश दे दें कि तुम हमारे हो, तुम्हारा यह स्वरूप है।

न आना न जाना मिटी झंझटाई,
फकीरी है ऐसी अदल शहंशाही।।

फिर **'न आना'** माने जन्म लेना, **'न जाना'** माने मृत्यु। जन्म-मृत्यु का फन्द कट जायेगा। **'न आना न जाना मिटी झंझटाई'**– सारे झंझट दूर हो गये, आवागमन की झंझट मिट गयी। **'फकीरी है ऐसी अदल शहंशाही।'**– फकीर एक ऐसी चीज है, सदा रहने वाली बादशाहत है।

'सभी हैं उसी में और वो है सभी में'

जिस स्वरूप में वह फना हुआ है, विलय हुआ है, पूरा यावनमात्र जगत उसी में है। अर्जुन! मेरे तेज के अंश मात्र से सृष्टि का सृजन, पालन और परिवर्तन होता ही रहता है।

5. सभी हैं उसी में और वो है सभी में,
नजर एक बिन नहीं दूजे समाई।

'एक नजर'– एक दृष्टि के आये बिना द्वैत कभी समाप्त नहीं होता। दूजा माने और भी कोई है। यह दूजा, द्वैत समाहित, समाप्त नहीं होता। **'नजर एक बिन नहीं दूजे समाई।'**– यह द्वैतपना कभी विलीन नहीं होगा। एक नजर आये बिना, दूजा भी कोई है, हम अलग भगवान अलग, यह रोग समाप्त नहीं होगा, समाहित नहीं होगा।

कहे लाल जिसने है मस्ती को पाई,
अमर तख्त पर गादी अपनी बिछाई।।

जिसने इस मस्ती को पा लिया..... एक नजर आ गयी, एक स्थिति आ गयी जिसने इस मस्ती को पा लिया, **'अमर तख्त पर गादी अपनी बिछाई।'**– जो अजर अमर है, शाश्वत है, सनातन है, उस तख्त पर अपनी गद्दी बिछा ली, वहाँ उसको स्थान मिल गया। इसी आशय के एक भजन में संत कबीरदास जी कहते हैं–

कहत कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूँ न मरै।
रस गगन गुफा में अजर झरै।।

एक ज्योतिषाचार्य पण्डित थे। ज्योतिष अच्छी चटकी हुई थी, तीन मंजिला घर बना लिया। लड़का एक ही था, और वह पापा की कमाई छान-घोंटकर मस्त। वह महीने में दस-बीस हजार रुपया कर्जा कर ले, पिताजी भरा करें। एक दिन पण्डितजी का शरीर छूट गया, अब उसको उधार कोई न दे। पाँच रुपये की कीमत की थाली तक बिक गयी, बस टनाटन मकान खण्डहर भर रहा, लिपाई-पुताई-चूना कुछ नहीं।

एक सन्त आये। विरक्त, संन्यासी महापुरुष आये, खुला एकान्त देखा तो तख्त पर बैठ गये। लड़का भटककर शाम को सात बजे पहुँचा, बोला– ''अरे महाराज! चलिए, हम मुखिया जी के दरवाजे ले चलते हैं, आपको विधिवत् भोजन मिलेगा, मैं आपको दो रोटी नहीं खिला पाऊँगा।'' महात्मा बोले– ''अरे, हमको रोटी नहीं खाना है, हम खाये-पीये ठीक हैं।'' वह बोला– ''महाराज! एक तो हमारे पास कुछ नहीं बचा और एक महात्मा दरवाजे में रातभर भूखे पड़े रहें! क्यूँ पाप में डुबाते हैं? आप जाओ।'' लेकिन महात्मा डटे रहे, बोले– ''तू चिन्ता ही मत कर, तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा।''

बड़े सबेरे महाराज घूमने लगे उसके घर में तो सब कोठरियाँ टनाटन खाली। संत ने पूछा– ''क्यों रे तुम्हारे पिताजी बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य थे?'' वह बोला– ''हाँ महाराज!'' संत बोले– ''तब तुम्हारी कुण्डली तो बनायें ही होंगे?'' वह बोला– ''हाँ कुण्डली बनी है।'' संत ने कहा– ''ला जरा।''

देखा कुण्डली। वह महापुरुष भी घर छोड़ने से पहले ज्योतिष ही पढ़े रहे। जहाँ देखा तो बोले– ''क्यों रे! तुम्हारे पास कोई घोड़ा है क्या?'' वह बोला– ''हाँ महाराज! वो बबूर में बँधा हुआ है, एक मरियल घोड़ा। इसी में चढ़कर तेरही खाने जाया करता हूँ।'' महात्मा बोले– ''बेच दे।'' वह बोला– ''अरे महाराज! फाँसी न दो, बस इतना ही तो धन है मेरे पास, फिर रह क्या जायेगा?'' महात्मा बोले– ''बेच जल्दी, चाहे दस रुपये में बिके।''

संत ने घोड़ा बिकवा दिया, फिर बोले– ''ला आटा-भाटा, लिट्टी-चोखा लगा। ढेर पैसा मिलेगा तो खीर बना ले, और क्या करेगा।'' दोनों ने भोजन

बनाया, खाया। लड़का बोला– ''महाराज! आप अच्छे आये... पहले हम बाप के नालायक लड़के रहे, थोड़ा-बहुत बचा रहा वो आप लिप दिये।''

दूसरे दिन लड़का बोला– ''अरे महाराज! वहाँ एक घोड़ा और बँधा है।'' महात्मा बोले– ''अच्छा, एक और बँधा है! उसको भी बेच दे, चाहे दो रुपये का बिके।'' तुरन्त बेच दिया। जो कुछ पैसा मिला, फिर उससे आटा-भाटा आया, ताव से भोजन बना।

तीसरे दिन भी एक घोड़ा और.... पचासों घोड़े बिक गये, अब वह लड़का बोला– ''महाराज! जन्मभर यही रहो, आप महाराज बड़े काम के हैं।''

उधर विधाता ने उन गुरु महाराज से अनुभव में कहा– ''क्यों हमारे पीछे पड़े हो?'' संत बोले– ''भगवन्! सेवक से क्या भूल हो गयी?'' विधाता बोले– ''पण्डित का घोड़ा क्यों बेचवा देते हो?'' संत बोले– ''उससे आपका क्या नुकसान है प्रभो!'' विधाता बोले– ''उसके कर्म में केवल एक घोड़ा भर लिखा है।'' संत बोले– ''जय हो विधाता की! वाणी अजर रहे, अमर रहे, आप घोड़ा भर दिये रहो। हमने कब कहा कि उसे लखपति बना दो।''

विधाता ने सोचा, बाबाजी अब नहीं पिण्ड छोड़ेंगे। उस दिन से पण्डित को भी सब आटे-बाटे लगा, बुद्धि सुधर गयी। अब ज्योतिषाचार्य का बेटा था, कुछ तो गणत्वां-गणत्वां जानता ही रहा, ज्योतिष शुरु कर दिया, दशा बदल गयी। तो–

सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥

(मानस, 4/16/6)

जिस प्रकार शरद ऋतु के आतप को रात्रि में शशि हर लेता है, ठीक उसी तरह व्यक्ति के पाप को संत हर लेते हैं।

एक राजा साहब को नींद नहीं आ रही थी। रात को बारह बज गया तो अपने महल की चौथे मंजिल से नीचे देखा तो रोड के किनारे एक चबूतरे के ऊपर एक महात्मा बैठे दिखाई पड़े। महात्मा शाम को आये थे और वहीं बैठ गये थे। कुछ देर में राजा ने देखा कि वह विभूति बिछा रहे हैं। महात्मा

विभूति बिछाकर लेट गये। फिर उठकर देखा तो महात्मा चार बजे भजन में बैठे थे।

राजा को चिन्ता के मारे नाक में दम... कहीं विवाद छिड़ गया था, कहीं कुछ था, कहीं कुछ.... सेनापति-मन्त्री आवारागर्दी कर रहे थे, उसको नींद नहीं आ रही थी। बड़े सवेरे महात्मा को बुलवाया, बोले– ''कहिए महाराज! आपकी रात आज कैसी बीती?'' महात्मा बोले– ''राजन्! कुछ रात्रि तो आपकी और हमारी एक ही जैसी बीती, और कुछ रात्रि हमारी आप से अच्छी बीती।''

राजा को बड़ा क्रोध आया, सोचा– सोता है चट्टान पर रखोड़ा बिछाकर, और हमारे मखमल के गद्दे, चारों तरफ अँतर, तेल छिड़का हुआ, मधुर-मधुर वाद्य लगे हुए हैं, चारों कोनों की खूँटियों पर मच्छरदानी है, कहता है आप से अच्छी बीती, लेकिन क्रोध रोककर बोले– ''वह कैसे महाराज?''

महात्मा बोले– ''राजन्! जब आप गाढ़ निद्रा में सो गये, हम सो गये, गाढ़ निद्रा में यह भान नहीं रहता कि हम अपने घर में हैं या जंगल में हैं या कहाँ हैं, जो गाढ़ निद्रा वाली रात्रि है उसमें महल का भी भान नहीं रहता, पलंग का भी भान नहीं रहता, जंगल में हैं कि घर के शयन कक्ष में हैं– यह भी भान नहीं रहता। तो गाढ़ निद्रावाली रात्रि हमारी और आपकी बराबर बीती। और जब आँख खुल गई तो हम तुरन्त भजन में लग गये। आपने भी आँख खुलने के बाद जरुर कुछ किया होगा। आँख खुलने के बाद जब हम भजन में लग गये, भजन वाला वह समय, वह रात्रि-समय के दो पहर हमारे आप से अच्छे बीते।''

तब राजा बोला– ''महाराज! आप ठीक कह रहे हैं, हम तो मखमल भर बिछाये ही हैं, नींद तो कायदे से आई ही नहीं।''

हम सुख की सामग्री खरीद सकते हैं, सुख नहीं खरीद सकते। बढ़िया शय्या खरीद सकते हैं लेकिन निद्रा नहीं खरीद सकते। वह तो उसे मिलती है, **'फनां के मुकामों से आशा उठाई।'** अपने आप को भगवान को सौंप

दो, उनके हाथ का यंत्र बन जाओ और फिर चिन्तन में डूब जाओ तो हमारे योगक्षेम का भार भगवान अपने हाथ में ले लेते हैं, हमें कौन चिन्ता!

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥

(मानस, 3/42/5)

मैं अपने भक्त की वैसे ही रखवाली करता हूँ जैसे शिशु की रक्षा मातायें किया करती हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गीता, 9/22)

अनन्य माने अन्य न। मुझे छोड़कर अन्य किसी देवी-देवता को न भजते हुए केवल मुझे भजता है, श्रद्धा और समपर्ण के साथ भजता है, ऐसे समर्पित भक्त के योगक्षेम का भार मैं स्वयं वहन करता हूँ। योग सिखाना, प्रकृति के अनन्त खो-खन्दकों से निर्भीक आगे ले चलना, दर्शन, स्पर्श और स्थिति दिलाना– यह भार मैं स्वयं वहन करता हूँ। इसलिए समर्पणवाले साधक के लिए– '**अमर तख्त पर गादी अपनी बिछाई।**' आत्मा ही अजर अमर है, विधाता और सृष्टि मरणधर्मा है। इस मुकाम पर पहुँचकर वह अपना आसन लगा लेता है।

॥ ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय॥

अवधू भजन भेद है न्यारा

भोजन इस शरीर का पोषण है। पवित्रता साधक के अन्तःकरण की होती है, मन में श्रद्धा की, निश्छल प्रेम की, निष्कपट प्रेम की होती है। भगवान सदैव भाव के भूखे होते हैं।

द्वापर में राजसूय यज्ञ हो रहा था। द्रौपदी ने कहा– केशव! इतना खर्च हुआ, अपार धन व्यय हुआ, हो रहा है, क्या प्रमाण कि यज्ञ सफल हो गया? भगवान श्रीकृष्ण बोले– सर्वोपरि महापुरुष जहाँ थोड़ा जूठन गिरा देगा, चार ग्रास प्रसाद तुम्हारा खा लेगा तो मान लो तुम्हारा यज्ञ सफल हो गया। उस समय आकाश में घण्टा बजेगा।

तुरन्त सैंकड़ों रथ दौड़ गये। जितने दुनिया में सुने हुए महात्मा थे, गद्दीनशीन, पीठाधीश्वर.... सबको लाकर पटक दिया। सबने भोजन किया, हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया, दक्षिणा भी लिया और चले भी गये लेकिन घण्टा नहीं बजा। तब द्रौपदी ने कहा– प्रभो! घण्टा तो नहीं बजा। भगवान बोले– इनसे भी श्रेष्ठ कोई महापुरुष छूट गया है। द्रौपदी बोली– भगवन्! व्यास आये, नारद आये, देवल आये, धौम्य आये, इनसे बड़ा भला हो भी कौन सकता है? तब भगवान बोले– काशी में एक हैं– सूपा भगत।

तुरन्त भीम ने रथ लिया और भागा, सोचा– यह बबाल खत्म हो तो शिकार में जाऊँ। काशी में प्रवेश करते ही दशाश्वमेध घाट पर बहुत स्नान करके, मन्त्रोच्चारण करते हुए चले आ रहे थे। भींगी धोती, चन्दन वगैरहा देखा, भीम ने सोचा– संतों का हाल तो भक्त विद्वान ही जानते हैं, इनसे पूछूँ, बोला– काशी के महान् संत सूपा भगत कहाँ निवास करते हैं?

सब बिगड़ खड़े हुए, बोले– अरे, आप तो राजकुमार जैसे लग रहे हो, आपको किसने भरमा दिया कि वह भगत है? वह जाति का डुमार है, मलेच्छ है, नीच है, कि भगत है? जब कहो, बब्बा राम-राम कहो तो घण्टा

बाँधे रहता है कानों पर, कान हिलाकर दूर चला जाता है। न जुबान से राम, ओम् कहता है, और न ही कानों से सुनता है। वह काशी का कलंक है। आपको किसने भरमा दिया? रोज मणिकर्णिका घाट पर हजारों चितायें जलती हैं, उसको मौत भी नहीं आ जाती कि काशी का पाप तो कम हो जाता। पण्डित बहुत बिगड़े।

भीम की श्रद्धा तो आधी हो गयी, किन्तु आया इसीलिए ही था, गया। जाकर देखा, वास्तव में वह उलूल-जूलूल पड़े हुए थे। न दण्ड न प्रणाम, खड़े-खड़े बोला– महाराज! चक्रवर्ती सम्राट महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आपका निमन्त्रण है। दूध की नदियाँ बह रही हैं, घी के कुण्ड भरें हैं। जितना चाहो दही खाओ। और पकवान हैं, रसगुल्ला, रसमलाई है..... सब्जियाँ भी गिना ले गया।

उन महात्मा ने देखा– एड़ी से चोटी तक एक उदण्ड सामने खड़ा है। ससुरा, न दण्ड न प्रणाम, बोलने की भी तमीज नहीं। महात्मा ने कहा– भैया, हमारी जाति-पाँति ठीक नहीं है। भीम को बड़ा गुस्सा आया– एक तो महाराजा युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ, एक मैं महाबलशाली भीम लेने आया और इन अघोरी जी का नखरा देखो, कहते हैं– जात-पाँत ठीक नहीं है। वह तो मैं काशी में प्रवेश करते ही हम समझ गये, जान गये कि कितने पानी में हो। इसके जाने से कौन-सा यज्ञ पूर्ण होगा! भगवान को भी लगता है, विनोद सूझा है। रथ घुमाया, चला गया।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– अर्जुन! तुम जाओ। यदि वह महापुरुष नहीं आये तो तुम यज्ञ को अपूर्ण ही समझो। तुरन्त अर्जुन गया, सादर चरणों में मस्तक टेककर प्रणाम किया, उठाकर रथ में बैठाया, ले आया, कुछ कहा ही नहीं।

अब द्रौपदी ने बड़ी सजावट से थाल परोसा। अब वह भगत क्या जाने क्या है, सब एक में मिला दिया, गदरसट्ट हो गया और भैंस के चारे की तरह कुछ उठाकर दो-चार ग्रास खा लिया, बाकि दूर सरका दिया, हाथ धो लिया। न दुआ, न आशीर्वाद, कुछ नहीं। अरे, हाथ उठायेंगे तभी दुआ होई!

वह तो हृदय का वेब (तरंग) है, चलता है। किन्तु घण्टा नहीं बजा। तब द्रौपदी बोली– केशव! अब घण्टा तो नहीं बजा? भगवान बोले– द्रौपदी! किसी की अश्रद्धा हो गयी है। संत को किसी ने भोजन कराया ही नहीं, अश्रद्धा हो गयी है। टुकड़ा फेंका है, भोजन नहीं कराया। द्रौपदी बोली– भगवन्! अश्रद्धा तो मेरी ही हो गयी। हमने सोचा, इतने बड़े महापुरुष आ रहे हैं तो रातभर जागरण करके हमने स्वयं विधिवत् भोजन बनाया, अपनी देख-रेख में हमने खुद बनाया, जीवन में जो कुछ भोजन बनाने की कला हमने सीखी थी, सारी कला उड़ेल दिया लेकिन इन अघोरी जी ने एक ही में गदरसट्ट करके जो खाना था, खा लिया बाकि सरका दिया, हमारे पकवानों की कदर नहीं किया। अश्रद्धा तो हमारी हो गयी। ये पता होता तो हम क्यों मरते-खपते।

भगवान श्रीकृष्ण बोले– द्रौपदी! संत लोग पकवान नहीं खाते, **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** (कुमारसम्भव, 5/33)– सारे साधन का माध्यम शरीर है, शरीर से ही साधना होनी है। सम्पूर्ण साधना का माध्यम शरीर है इसलिए समय पर सूखा-रूखा, तर और हल्का कोई फर्क नहीं, समय पर इसके रख-रखाव के लिए कुछ दे दिया करते हैं। वो पकवान नहीं खाते। तुम्हारे पकवानों की कदर ये राजा लोग बैठें हैं, ये लोग करेंगे, ये राजकुमार करेंगे। ये महात्मा हैं, पकवान नहीं खाते। शरीर से ही साधना सम्पादित होती है, इसको रखने के लिए समय पर कुछ दे दिया करते हैं।

द्रौपदी को आश्चर्य हुआ, दुनिया में ऐसे लोग भी हैं कि पकवान खायें और पता न चले। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने पुनः विधिवत् भोजन बनाया और खिलाया। सूपा भगत ने दो ग्रास खाकर ज्यों ही हाथ धोया, आकाश में घण्टा भी बजा, यज्ञ सम्पन्न हो गया। अस्तु, भगवान अपने भक्त को पहचानते हैं। प्रदर्शनी लगाने से कुछ नहीं होता। कानों से तो वह सुनते ही नहीं थे लेकिन हर समय स्वांस में लगे रहते थे। एक भी स्वांस उस प्रभु के नाम के बिना खाली नहीं जानी चाहिए।

मुहम्मद साहब की ओरिजनल वाणी में लिखा है कि खुदा, उस मालिक के नाम के बिना एक भी स्वांस खाली जाती है तो उससे खुदा कयामत में

वैसे ही पूछता है जैसे पापी को पाप के बदले में पूछा जाता है, जिसके लिए दोजक है, नरक है।

श्वास श्वास पर राम कहु, वृथा श्वास जनि खोय।
ना जाने इस श्वास का, आवन होय न होय॥

गुरु महाराज का बराबर बल था कि श्वांस को देखो। श्वांस एकदम तैलधारावत् खड़ी रहे। न भला उद्वेग उठे, न बुरा उठे। ओम्-ओम्-ओम्..... लौ लग जाये, ध्वनि प्रवाहित हो जाये, डुबकर रहो। बाहर झाँकोगे तो कचरा ही मिलेगा, और कुछ नहीं मिलेगा।

सूपा भगत था तो डुमार, लेकिन अपने युग का सर्वोपरि महापुरुष था। और जो बाजू-बाजू पहले महात्मा आये थे दासीपुत्र नारद, कुँआरी कन्या केवटन के लड़के व्यास, सुखदेव भी दोगले...। जितने भी बढ़िया महात्मा हुए हैं, चोट खाये हुए बढ़िया हुए हैं। और जो मखमल के गद्दों में जन्मे, उनको तो पता ही नहीं चलता कि भगवान किस चिड़िया का नाम है। इसलिए–

सुमिरन ऐसा कीजिए, जाने सुमिरनहार।
या जाने करतार ही, ना जाने संसार॥

हर समय – खाना खाते, पानी पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, शौच जाते, रोटी बनाते, लड़का खिलाते, खुरपी चलाते, काम करते – हर समय स्मृति-पटल पर नाम स्मरण बना रहे तो सोने में सुहागा है। सुबह-शाम बैठकर आधा घण्टा अवश्य देना चाहिए।

परमात्मा परम धाम हैं तो सद्गुरु ही भजन की जागृति, पूर्तिपर्यन्त पथ हैं। उन्होंने हृदय से लगाम छोड़ दी तो तुम कुछ नहीं, बे-लगाम के हो और कहीं कुछ नहीं। फिर आपके पास साधना नहीं है। ऐसा है, जितने भी भक्ति के स्रोत हैं – तीर्थ, व्रत, उपवास – ये सब सही हैं किन्तु ये सब स्रोत आपको भक्ति के धरातल पर खड़ा कर देंगे, उसके बाद भजन का तरीका कुछ और है।

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥

(मानस, 7/95/2)

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥

(मानस, 2/290/1)

उस सुख, कर्म और धर्माचरण में आग लग जाये जहाँ राम – एक परम प्रभु – के चरणों में श्रद्धा न हो। यदि ऐसा नहीं है तो,

जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥

(मानस, 2/290/2)

वह जोग कुजोग है, ज्ञान अज्ञान है जहाँ राम एक परम प्रभु के चरणों में प्रेम की प्रधानता न हो। जोग कुजोग है, ज्ञान अज्ञान है, धर्म नहीं वह अधर्म है, कर्म नहीं कुकर्म है। तो भजन एक परमात्मा का।

भजन-जागृति के लिए जितने भी तीर्थव्रत हैं, यह अनिवार्य हैं।

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥

(मानस, 7/48/2)

सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥

(मानस, 7/119/18)

तीर्थों का भ्रमण, सम्पूर्ण साधनों का समुदाय, जोग और वैराग्य, ज्ञान में दक्षता– **'जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥'** (मानस, 7/125/7)– जहाँ तक वेदों ने साधना का वर्णन किया है, यह सब साधन हैं। ये झूठे नहीं, सचमुच साधन हैं किन्तु– **'सब कर फल हरि भगति सुहाई।'**– सबका फल है– हरि की भक्ति। और वह हरिभक्ति **'सो बिनु संत न काहूँ पाई॥'**– बगैर संतों के आज तक किसी ने प्राप्त किया ही नहीं।

जब भक्ति जागृत हुई, भक्ति की श्रेणी प्राप्त कर ली तो उसके बाद में भजन का एक भेद है, एक रहस्य है, वह कुछ अलग है। जो कुछ कहा–सुना जा रहा है, इतने से काम नहीं चलेगा, वह अनुभवगम्य है। भजन एक जागृति है। इसी आशय का एक भजन है–

अवधू भजन भेद है न्यारा।

1. क्या गाए क्या लिख बतलाए, क्या भरमे संसारा।
क्या संध्या तरपन के कीन्हे, जो नहिं प्रेम पसारा।।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

2. मूड़ मुड़ाए जटा बढ़ाए, क्या तन लाए छारा।
क्या पूजा पाहन कर कीन्हे, क्या फल किए अहारा।।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

3- बिनु परिचय साहेब ह्वै बैठे, बिषय करे हंकारा।
ज्ञान ध्यान का मर्म न जानै, वाद करे हंकारा।।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

4- अगम अथाह महा अति गहरा, बीज न खेत निवारा।
महा सो ध्यान मगन ह्वै बैठे, काट कर्म की छारा।।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

5- जिनके सदा अहार अन्त में, केवल तत्त्व बिचारा।
कहत कबीर सुनो भाई गोरख, तारु सहित परिवारा।।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

कबीर साहब संतों को उद्देश्य बनाकर कहते हैं– रे अवधूत! संत समाज में बड़ी वेषभूषा है – कोई लठधारी, कोई मठधारी, कोई दसों इन्द्रियाँ रगड़धारी, खोपड़ी-खोपड़ी की गति न्यारी। और कहीं-कहीं तो उन वेषभूषाओं ने इतनी जड़ पकड़ लिया, कहते हैं– विभूति नहीं लगाओगे तो मुक्ति ही नहीं होगी, तिलक नहीं लगाओगे तो मुक्ति ही नहीं होगी, और संस्कृत में यदि भगवान को याद नहीं करोगे तो मुक्ति नहीं होगी। हम बोले– भैया, संस्कृत तो पण्डित लोग भी नहीं जानते। जब बगैर संस्कृत के मुक्ति होना ही नहीं तो दुनिया को तो मुक्ति नहीं मिलेगी। संस्कृत कहीं है ही नहीं। मुक्ति भारत में दस प्रतिशत पण्डितों को मिलेगी, और किसी को नहीं। किन्तु जितने अच्छे से अच्छे महापुरुष हुए हैं, अँगूठाछाप हुए। कालान्तर में कुछ परम्परायें, प्रथायें जड़

पकड़ लेती हैं। इन जड़ पकड़ी प्रथाओं के विषय में संत कबीरदास जी ने कहा– इन प्रथाओं का निर्वाह करने से कभी कल्याण नहीं। वह भजन नहीं, और न ही वह भजन की कोई विधि है। कहीं-कहीं महात्माओं में चलता है, ठाड़ा तिलक नहीं लगाओगे तो मुक्ति नहीं होगी।

एक जनश्रुति में कहते हैं कि– एक बार बारह वर्ष का महाअकाल पड़ा। सब जीव-जन्तु मर गये। आधे आदमी भी मर गये, शेष मरने की सीमा पर खड़े थे। पेड़ों के छिलके उतरकर जमींदोज हो गये, खड़े-खड़े ही सूख गये। देवताओं ने, विधाता ने, मनुष्यों ने मिलकर विष्णु भगवान की स्तुति किया। लोग बोले– आखिर कुछ तो भोग लगाना पड़ेगा। इतने में एक कुत्ता जी रहा था, दिखाई पड़ गया। विधाता ने कहा– लाओ-लाओ, इसको लाओ। पकड़कर लाये, काटा। उसके अण्डकोष, इन्द्रिय और नाखून काटकर फेंक दिया क्योंकि विधाता ने कहा– इतनी चीजें अशुद्ध हैं। और शेष का भोजन बनाया, विष्णु भगवान को भोग लगाया। भगवान प्रसन्न हो गये, पानी बरसा, अकाल दूर हो गया, जनता का दुःख निवारण हो गया। नाखून से तो बना लहसून, इन्द्रियों से बनी गाजर, किसी से बना प्याज इसलिए विष्णु भगवान को लहसुन, प्याज, गाजर का भोग नहीं लगता।

वनस्पति जगत में है ही क्या! हर वनस्पति कहीं मूल है, जड़ का नाम मूल है। मुलायम होती है तो उसका नाम कंद है। फिर अंकुर है, पत्र है, पुष्प है, फल है। वनस्पति जगत में और है ही क्या! कुछ वनस्पतियाँ अति उष्ण होती हैं, कुछ वनस्पतियाँ अति शीत होती हैं। वैद्य को इसका ज्ञान है तो इसका प्रयोग करते हैं। शीत-वातवाले को गर्म पकड़ा देते हैं, और गर्मी है तो ठण्डा पकड़ा देते हैं, भला इसमें कौन-सा धर्म आ गया? वनस्पति जगत जो कुछ है, खाद्य पदार्थ है, यह शाकाहार कहलाता है। कहते हैं, विष्णु भगवान को लहसुन, प्याज का भोग नहीं लग सकता, क्योंकि वह तो ब्रह्मा ने फेंक दिया था, अपवित्र वस्तु से बना है इसलिए। हम बोले– माना कि उतना अपवित्र है लेकिन पूरा कुत्ता तो पवित्र है, काटकर भोग क्यों नहीं लगाते नागालैण्ड की तरह? नागालैण्ड में कुत्ते खा लेते हैं। इस प्रकार के अंधविश्वास

के कथानक केवल धर्मशास्त्र के विस्मृत हो जाने से सामने आ गये। आपका धर्मशास्त्र गीता है। महापुरुषों के सर्वत्र न होने से, अभाव में कालान्तर में रूढ़ियाँ जड़ पकड़ लेती हैं।

गुरु गोविन्द सिंह के पीछे ऐसी रूढ़ियाँ आ गयी, इन्दिरा जी की जान ले लिया। इनका जो बॉडीगार्ड था, वह जब पंजाब गया तो सबने मिलकर उसको जबरदस्ती पकड़कर गुरुद्वारे में अमृत चखा दिया, पिला दिया कि इन्दिरा को तुम गोली मारोगे। अमृत पीने का तात्पर्य होता है– प्रतिज्ञाबद्ध हो गया। वो करेगा, चाहे जो बीते।

वह वापस आया तो विचार में पड़ गया– इन्दिरा जी ने हमको प्रमोशन दिया है, बच्चे की तरह मानती हैं, मेरा सम्मान है, मैं बॉडीगार्ड हूँ, मैं भला अपने मालिक के साथ कृतघ्न नहीं हो सकता, मैं ये काम कभी नहीं करुँगा। अमृत पिया है तो ठीक है बल्कि लौटकर कभी पंजाब नहीं जाऊँगा, लेकिन अब यह काम नहीं करुँगा। इन विचारों में डूबा था, इतने में एक बाज आया और मँडराकर इन्दिराजी की कोठी के ऊपर बैठ गया। जहाँ बाज दिखाई पड़ा तो तुरन्त माथा टेका, बोला– गुरुजी तुसी, जब तोहडी आज्ञा तो सानू की। जहाँ इन्दिराजी बाहर निकली तो चला दिया बारह गोली। एक रूढ़ि कि गुरुजी आ गये।

रूढ़ियाँ महापुरुषों के बाद बनती हैं। महापुरुष न तो किसी रुढ़ि का समर्थन करते हैं और न ही बना सकते हैं क्योंकि संतों द्वारा मनुष्यों में कभी दरार डाली ही नहीं जा सकती। उनके नाम से जो डिग्रीधारी हैं, वह ये करते हैं। ऐसे ही सधुआई लाईन में छोटी-मोटी त्रुटियाँ देखने को मिली तब इन महापुरुष ने अपनी तरफ से निर्णय दिया कि–

अवधू भजन भेद है न्यारा।

भजन का भेद, भजन का रहस्य कुछ और है। यह जो कर रहे हो, केवल इतना ही नहीं है। और कर क्या रहे हैं?

'क्या गाए क्या लिख बतलाए'

बहुत से लोगों ने रातभर गाना ही शुरू कर दिया। कबीरपंथ में होता रहता है, गुरुद्वारों में भी कीर्तन चलता रहता है – हर समय वाहे गुरु, वाहे गुरु। आप लोग भी सब जगह गायन ही करते हो। यह साधना का आरम्भ है। भगवान कहते हैं– **'नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।'–** जहाँ कीर्तन होता है, मैं वहाँ रहता हूँ। लेकिन जो पूर्ण भजन की जागृति, योग साधना की जागृति है, उसका भेद कुछ और है। यह आरम्भ है।

'क्या गाए क्या लिख बतलाए'– कागज काला करने से क्या मिलेगा! **'क्या भरमे संसारा'-** बद्रीनाथ, रामेश्वरम, मक्का-मदीना, गुरुद्वारा, चर्च.... कोई कहीं, कोई कहीं... यह भ्रमण ही तो है।

'क्या संध्या तरपन के कीन्हे'

और क्या हो गया जो तीन समय संध्या-वंदन ही कर लिया? जो गोपनीय भजन की जागृति है, वह यह नहीं है, वह आगे है।

क्या संध्या तरपन के कीन्हे जो नहिं प्रेम पसारा।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

आपकी वृत्ति में एक परम प्रभु के प्रति प्रेम का पसार नहीं तब तक सब सूखा है, रूखा है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। (गीता, 4/39)

श्रद्धावान और संयमित इन्द्रिय पुरुष उस ज्ञान को प्राप्त करता है। **'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः'**– उस तत्त्व के परायण, समर्पित और संयमी पुरुष ही उस ज्ञान को प्राप्त करता है। श्रद्धाविहीन दिया दान, किया कर्म, जपा जप सब व्यर्थ चला जाता है, जैसे फसल तो तैयार थी लेकिन पत्थर पड़ गये।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।

(मानस, 1/184/5)

प्रेम, श्रद्धा, विरह – यह पर्यायवाची शब्द है। **'जो नहिं प्रेम पसारा'**–

आपके हृदय में प्रेम का प्रसार नहीं तो यह सब गलत है, संध्यावंदन अधूरा है। और घर छोड़ दिया–

'मूड़ मुड़ाए जटा बढ़ाए, क्या तन लाए छारा।'

यह सम्प्रदाय हैं। संन्यासी मूड़ मुड़वा लिया, जटा रख लिया। भगवान बुद्धकाल में तो जटाओं का इतना महत्व था कि जटा को इतना बढ़ाओ की जमीन छू जाये। बाल गिर जाये तो उसमें गूँथ दो। कम्बल की तरह इस्तेमाल कर दे, उस दिन तपस्या पूर्ण। इसका नाम था केशकम्बल-सम्प्रदाय। जिनके बाल उड़ गये उस सम्प्रदाय में उनका तो ठिकाना ही नहीं था। शरीर से झड़ने वाले, जामने वाले बालों पर सधुआई निश्चित हो गयी।

'मूड़ मुड़ाए जटा बढ़ाए, क्या तन लाए छारा।'

और तीसरा वेश होता है – विभूति। उससे भी क्या होगा! ये मूड़ मुड़ाना, और जटा उलझ ही जाती है, कंघा पानी न करो तो अपने आप ही बन जाती है। वस्त्र का अभाव है, मच्छर काट रहे हैं तो पूर्वजों ने एक नियम बना दिया कि विभूति लपेट लो, मस्त रहो। यह त्याग की पहचान अवश्य है, त्याग है लेकिन इतने का ही नाम भजन नहीं है।

क्या पूजा पाहन कर कीन्हे, क्या फल किए अहारा।।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

पूजा हृदय में होती है। शुरूआत वाली पत्थर पूजा तो श्रद्धा स्थिर करने के लिए ठीक है, आगे पत्थर-पूजा नहीं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। (गीता, 18/61)

अर्जुन! ईश्वर सभी भूत-प्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। हृदय के अन्दर, इतना समीप तब लोग देखते क्यों नहीं? अर्जुन! मायारूपी यन्त्र में आरूढ़ होकर भ्रमवश भटकते ही रहते हैं इसलिए नहीं देखते।

ईश्वर हृदय में है तो हम शरण किसकी जायें?

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (गीता, 18/62)

उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाओ, **'सर्वभावेन'**– सम्पूर्ण भावों से जाओ। मन-क्रम-वचन से हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाओ। मान लो, सारी मान्यतायें तोड़ी, भूत-भवानी, भुईया रानी बचपन से विरासत में मिला है, कदाचित् वह सब छोड़ा, हृदयस्थ ईश्वर की शरण चले ही गये तो उससे लाभ क्या?

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।

उसके कृपा-प्रसाद से तुम परम शान्ति प्राप्त कर लोगे, **'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'**– उस स्थान को पा जाओगे जो शाश्वत है, अजर, अमर है।

परमात्मा राम को अयोध्या में तो कोई महात्मा मिला ही नहीं। विश्वामित्र एक जंगल से आये थे, फिर जंगल में चले गये। जब रामजी का वनवास हो गया तो महात्माओं की लाईन लग गयी। भरद्वाज ऋषि प्रयागराज में थे। हाथी चिंघाड़ रहे थे, शेर दहाड़ रहे थे। भरद्वाज ऋषि ने कहा– राम! इस पगडण्डी से चले जाओ, आगे जमुना मिलेगी। वहाँ तमाम लकड़ियाँ गिरी पड़ी हैं, लताओं की रस्सी से बाँधकर बेड़ा बना लेना, हिला-डुलाकर देख लेना और फिर उस पर पहले सीताजी को बैठा लेना और पोटली रख लेना, फिर दोनों भाई उसको चलाते हुए उस पार चले जाना।

जिस इलाहाबाद में आज चींटी की तरह आदमी चल रहा है, वाल्मीकी रामायण के अनुसार ऐसा बियावान जंगल था जहाँ लकड़ी के लिए आपको कुल्हाड़ी की भी जरूरत नहीं, तमाम लकड़ियाँ गिरी पड़ी थीं, लताएँ हैं। भरद्वाज, वाल्मीकि, अत्रि, सरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, माता शबरी और सहस्त्रों कुटीर मिली। ये तो प्रमुख महापुरुष थे। सुतीक्ष्ण आश्रम पहुँचकर रामजी ने कहा– भगवन्! मैं यहाँ ऋषियों के दर्शन करना चाहता हूँ। जंगल में कष्ट थोड़े भोग रहे थे, सब जगह मेहमानी हो रही थी। महात्माओं की कुटिया में रहते हुए दस साल बीत गए। जहाँ आश्रमों में असुरों का उत्पात था, उनका

वध करते हुए आगे बढ़ते गये। फिर सुतीक्ष्ण को लेकर अगस्त्य आश्रम पहुँचे। इतने कुटीरों में गये, सब जगह कोई न कोई ध्यानस्थ था, कहीं धूना जल रहा था, कहीं उपदेश हो रहा था। सर्वत्र तत्त्वज्ञान की चर्चा हो रही थी, मन्दिर किसी आश्रम में नहीं मिला। तो महात्माओं का भेद ही कुछ अलग है। जहाँ मन्दिर है वहाँ पुजारी गायब, और जहाँ नहीं है वहा भीड़ लगी है। हृदय ही मन्दिर है, वहाँ निवास करता है, उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाओ। उसके कृपा-प्रसाद से परम शान्ति प्राप्त कर लोगे, सदा रहने वाला जीवन और सदा रहने वाला धाम प्राप्त कर लोगे।

हमने मन्दिर में पूर्वजों की स्मृति सँजोई है। वहाँ हम प्रणाम करेंगे, आशीर्वाद लेंगे, यह सत्य है। यह प्रार्थना घर है, सामूहिक नामघर है। यहीं तक करके सोच लो कि हमने पूर्ति कर लिया तब एक भूल है। जब भजन जागृत हो जायेगा तो भजन कुछ और।

क्या पूजा पाहन कर कीन्हे, क्या फल किए अहारा।।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

फलाहार करने से क्या होगा, फल की इच्छा का दमन करो, निष्काम भाव से चिन्तन करो। तो– होगा कैसे? उसके लिए आपको पहचान चाहिए, परिचय चाहिए। भगवान अपना परिचय दे दें कि हम हैं, तू मेरा भजन कर, तब उसी के साथ ही भजन की जागृति होती है।

बिनु परिचय साहेब ह्वै बैठे, बिषय करे हंकारा।

परिचय मिला ही नहीं। गुरु महाराज कहते थे– भगवान जब कृपा करते हैं तो पेड़ से बोल सकते हैं, शून्य से बोल सकते हैं, उड़ते हुए भँवरों से बोल सकते हैं, जमीन से, चलते हुए व्यक्तियों से... सर्वत्र से बोल सकते हैं क्योंकि वह सर्वत्र हैं। ऐसे बहुत से महापुरुषों के गृह छोड़कर निरन्तर भजन में लगने का कारण बना।

सूरदास के बचपन का नाम बिल्वामंगल था। अपने माँ-बाप के अकेले बेटे। करोड़पति पापा। करोड़पतियों के लड़कों के पॉकेट में तो वैसे ही दस-

बीस हजार पड़ा रहता है। और जिन लड़कों के पास पैसा होता है, दोस्त तमाम हो जाते हैं। दोस्तों ने पहले डांस देखना सिखाया, फिर शराब पीना और बीस साल का होते-होते तो पतुरियों के कोठों पर डांस देखने लायक हो गया। माता-पिता ने बहुत समझाया, कोई लाभ नहीं। बड़ी नामजद अप्सरा थी, करोड़ों की सम्पत्ति वहाँ फेंक दिया। बिल्वामंगल के सामने कोई दूसरा रईस वहाँ टिक ही नहीं पाया।

एक दिन माता-पिता ने अपनी बहु से कहा– बेटा, भले घर में जन्मी हो, भले घर में आई हो, लड़का नालायक निकल गया जिस पर हमारा कोई वश नहीं है। लो ये पन्द्रह-बीस हजार बचा है, रख लो। इससे तुम अपना परवरिश करना, उस नालायक को मत बताना। और बूढ़ा-बूढ़ी मर गये। जहाँ कोठे पर सूचना मिली कि माता-पिता मर गये, बोला– ओह, यही मौका था मरने का, अभी तो कायदे से ठुमका चल रहा है। जैसे शराबी बेचारे बोलते हैं, वैसे ही बोला।

घर आया, बोला– अरे, सूखे ही मर गये कि कुछ देकर गये? वह बोली– जो भी है, पन्द्रह-बीस... उन्होंने ये दिया है, हमसे कहा था कि मैं आपसे न बताऊँ। उठाकर लेकर भागा, वह भी पतुरिया को दे आया और बोला– देखो जान, ये तेरह दिन मेरे जीवन के नरक के दिन हैं, माता-पिता मर गये, मैं तेरही बिताकर आऊँगा। लो, ये अन्तिम किश्त है। अब हमारा सर्वस्व तुम ही हो। अप्सरा समझ गयी अब इसके पास कुछ नहीं है तो मस्त हो गयी, दूसरों को बुला लिया, इस ग्राहक को छोड़ दिया।

बिल्वामंगल के माँ-बाप बहुत बड़े आदमी थे, तमाम रिश्तेदार इकट्ठे हुए। लड़के की दशा किसी से छिपी नहीं थी, सबने मिलकर धूमधाम से उनका अन्त्येष्टी किया, तेरही किया, दान-पुण्य किया। और लड़का जहाँ छुट्टी पाया तो गया सीधा कोठे पर। कड़ाके की ठण्ड में बाहर खड़ा होकर बोला– दरवाजा खोलो। वह बोली– कौन? तो बोला– मैं बिल्वामंगल। वह बोली– कुछ लाये हो? वह बोला– हमारा सर्वस्व तुम ही हो– 'या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण, कायारूपेण, मायारूपेण संस्थिता....' वह बोली– बेवकूफ कहीं का, हमने

तुमसे प्रेम ही कब किया था? मधुर बोलना, मुस्कुराना यह हमारा धंधा है। तुम्हारी पॉकेट में पैसा था तब तक प्रेम था। अब देखो न, ये रईस आ गये हैं। वह भी मुस्करा रहे थे। उसने सोचा– इतना अपार धन हमने इसको दे दिया ये कृतघ्न विमुख हो ही नहीं सकती, अब खोलेगी, विनोद करती होगी। रातभर खड़ा रह गया। कपड़े वगैरह तो उसी घर में थे, एक वस्त्र पहने रातभर डुगडुग काँपता रह गया।

सुबह जब दरवाजा खुला, दूसरे जब जाने लगे तो क्रोध में जाकर छूरा मार दिया। अब पतुरिया में जिउ कितना!, तुरन्त मर गयी। बहुत बड़ी अप्सरा थी, तुरन्त हंगामा मच गया, हथकड़ियाँ पड़ गयीं फाँसी हो गयी। और फाँसी में जब दो मिनट बाकि था तो औरत उनकी बड़ी पतिव्रता थी, सती-साध्वी थी। हालांकि माता-पिता ने कहा था कि उस दुष्ट से मत बताना लेकिन पति से कैसे दुराव करे! बता दिया। वह भागती हुई आई, बोली– घोर अन्याय हो रहा है, ये क्यों मारेंगे! ये तो उससे स्नेह करते थे। मैंने उस दुष्टा को मारा है। लोग बोले– क्यों मारा? तो बोली– एक दिन, दो दिन, वर्ष-दो वर्ष-दस वर्ष तक मैं सहन करती, पूरी जिन्दगी मेरे पति को बरगला रखा, मुझसे सहन नहीं हुआ, हमने मार डाला। आखिर धैर्य की तो भी कोई सीमा होती है। बड़ी समझदार थी। सूरदास छूट गये, वह पकड़ी गयी। फिर बाद में वकीलों ने राय करके, बहस करके उसको भी छुड़ा लिया, असलीयत तो सब जानते थे, वह तो रंगे हाथों पकड़ा हुआ था, ये तो पतिभक्ति में कह रही है।

बिल्वामंगल ने सोचा– जब इतना धन था तब तो इस स्त्री को हमने जूतियों में रखा, अब कुछ भी नहीं है, इस सती-साध्वी को कौन मुँह दिखाऊँ! मन ही मन प्रणाम किया और भागा वृन्दावन को ओर। नचनिया-गवईया के बड़ी बुद्धि होती है, कहीं से खड़िया माटी लेकर तिलक सही कर लिया, कहीं रामनामी माँग लिया और 'हरे कृष्ण! राधे-राधे' जपता हुआ उधर चला।

रास्ते में एक सेठ ऐसे थे उस क्षेत्र में दस-पाँच किलोमीटर की दूरी से कहीं कोई महात्मा निकले, सबको सादर लाओ, भोजन कराओ, कम्बल दो, कमण्डल दो, कुटीर बनवा दो, तीर्थ जायें तो व्यवस्था कर दो। बड़े धर्मात्मा

सेठ थे, वह भी लखपति ही थे। उन लोगों ने व्रत ले रखा था। आदमी छोड़ रखे थे, कहीं कोई महात्मा निकल न जाये। बिल्वामंगल पकड़े गये, सुबह फाँसी के तख्ते पर रहे और शाम को पकड़े गये... और वेशभूषा से पक्के संत। जहाँ सेठ-सेठानी सामने आये, बोले– भगवन्! भिक्षा करें, भोजन लायें? फिर बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, सेठानी को देखकर सोचने लगा– हमने तो छूरा मार दिया था, ये जी गयी? वह है कि उसकी बहन है? तो बोला– हम भोजन नहीं करेंगे। सेठ बोले– क्यों महाराज? कहिए तो बद्रीनाथ, रामेश्वरम् परिक्रमा की व्यवस्था कर दें, आपकी कुटीर बना दें। इस दरवाजे से आज तक कोई भिक्षा किये बिना गया ही नहीं। जो इच्छा हो व्यक्त करें, आपकी पूर्ति की जायेगी।

अब संतों की इच्छायें तो संतों ही जैसी होती हैं लेकिन वह तो आठ-दस घण्टे का ही संत था, बोला– हम सेठानी जी के साथ रहेंगे कमरें में तब फिर हम भोजन करेंगे। सेठ-सेठानी ने कहा– प्रभु परीक्षा लेने तो नहीं चले आये! सेठ ने कहा– तुम इनको भोजन कराओ।

सेठानी चाँदी के थाल में जब भोजन लेकर चली तो सूरदास को सुबह वाला फंदा दिखाई दे गया। फंदा गले में पड़ा ही था, दो मिनट होता ही कितना है, गले में पड़ रहा था और मोटे-मोटे जल्लाद खड़े थे साँवले-साँवले चार-छः, वह उठाकर ऊपर-नीचे कर ही रहे थे इतने में उसकी औरत ने आकर छुड़ा लिया। जहाँ दृश्य सामने नाचा तो भीतर ही भीतर काँप गया, बोला– ओह! एक औरत की वजह से मैं फाँसी पर चढ़ा, एक औरत ने मुझे फाँसी से छुड़ाया, और फिर भी मैं उसी दिशा में सोच रहा हूँ। ये सब दोष इन आँखों का है। न ये आँखें होती और न मुझे ये कुमार्ग का रास्ता दिखाई देता। बिल्वामंगल बोला– माताजी! सूई-डोरा लाओ। सेठानी बोली– क्या होगा महाराज? बोला– प्रेम थोड़ा टूट गया, सिलना पड़ेगा।

जहाँ सूईं-डोरा भेंट किया तो दोनों आँखें फोड़ लीं। सेठानी बोली– अरे, संतजी ने आँखें फोड़ लीं। सब भागकर आये, बोले– महाराज! आपने ये क्या किया? वह बोला– आपलोग चिन्ता मत करो, आप लोगों को कोई पाप

नहीं है। एक की वजह से हम फाँसी पर चढ़े, एक की वजह से उतरे, फिर भी आँखों का दोष है मुझे उसी दिशा में भटका रही है जबकि चला था भगवान की ओर। वह इन्द्रिय हमको नहीं चाहिए जो मुझे भगवान की राह से वंचित करे। आप चिन्ता न करें, मैं कोई बहुत बड़ा साधु नहीं हूँ। सुबह दस बजे तो फाँसी पर लटक रहा था, शाम को छः बजे आपके सामने हूँ, इन्हीं पाँच-सात घण्टे में जितनी भक्ति हो गयी हो उतना ही बड़ा भक्त हूँ। आप बिल्कुल चिन्ता न करे, कृपया हमको वृन्दावन का रास्ता दिखा दें। हमारा बहुत बड़ा उपकार हो गया है।

जन्म का अन्धा होता तो निकल गया होता, लेकिन अभी-अभी तो आँखें फूटी हैं, घोर जंगल में कुएँ में गिर गया। इतने पानी में सात दिन पड़ा रह गया। वह पड़ा क्या, मरना ही था। हे कृष्ण, हे गोविन्द, हे मोहन हे मुरारी..... जब तक स्वांस है तब तक तो नाम जप लूँ, प्रभु का सुमिरन, भजन कर लूँ, क्योंकि अब मरना ही बाकि है जीवन तो है नहीं। जंगल में आदमी कहाँ होता है!

सातवें दिन एक हाथ आया, सूरदास का हाथ पकड़ा– बाबा! कुएँ में क्या कर रहे हैं, बाहर आइए। कुएँ में क्या कर रहे हैं? और पकड़कर कुएँ से बाहर खींच दिया। बाहर खींचा तो सूरदास ने जमकर हाथ पकड़ा, बोले– भैया, कौन हो-कौन हो, बात तो सुनो! भगवान झटककर चल दिये। तब सूरदास समझ गये, ये पचास हाथ गहरा कुआँ, इतना बड़ा हाथ मनुष्यों का तो हो नहीं सकता। सिद्ध है कि भगवान ने हाथ बढ़ाकर हमें निकाला। फिर इतना कोमल हाथ जैसे दस साल के बच्चे का हो, और उतना बड़ा हाथ, और इतने हल्के बच्चे ने हमको बाहर खींच लिया। भगवान आये और कूप से मेरा उद्धार किया। तब सूरदासजी बोले–

कर छुड़ाये जात हो निबल जानिकै मोहि।
हृदय से जब जाओगे सबल बधूँगा तोहि॥

हमें निर्बल समझकर हाथ छुड़ाकर जाते हो, हृदय से जब जाओगे तो आपको बलवान समझूँगा। लग गया धुन में और पहुँच गया वृन्दावन।

वहाँ के पुजारियों ने आपस में विचार किया– क्यों, इस सूरा के गला में बड़ा लोच है! अब जन्मभर पतुरियों का गाना सुने रहा तो श्रोता लोगों के गले में कुछ दम आ जाता है। पुजारी बोले– यार, इसके गले में बड़ा लोच है, ऐसा करो, रासबिहारी के मन्दिर में बैठा दो, कुछ टुन-टुन करता रहेगा, आगन्तुक यात्रियों के कानों में भगवान की वाणी पड़ेगी, कथा पड़ेगी। और बैठा दिया।

लेकिन सूरदासजी वही भजन गाया करें जो भगवान का शृंगार हो, भगवान को जो भोग लगे वही बोले, उसके बाहर कुछ नहीं। गुलाब की माला है तो गाने में गुलाब की माला गा दे। पीला वस्त्र है तो पीला, नीला है तो नीला, आसमानी है तो आसमानी, धानी है तो धानी। एक मोर पंख, तीन मोर पंख, मूर्ति का जैसा कुछ शृंगार पुजारी कर दें वही गाया करें। तब पुजारियों ने सोचा– अन्धा देखता है क्या? ठीक वही गाता है जो हमलोग शृंगार करते हैं। ऐसा करो, आज शृंगार ही मत करो। कुछ नहीं किया, एक काली टिकुली लगा दिया, भगवान के मुँह में माखन पोतकर वैसे ही छोड़ दिया।

सूरदास बहुत खुश हुए, लगे मुस्कराने– **'आज हरि भये नंगम् नंगा, माखन चाटत करत उछंगा।'** जो कुछ था टिकुली वगैरह, सब गाकर सुना दिया। सब चरणों में गिर गये, बोले– भगवन्! हम लोग तो सोचे कोई भिखमंगा, अन्धा है, आप महापुरुष हैं, हमलोगों से महान् भूल हुई, ये कुटिया सब आपकी है। और एक बहुत बड़े भाग में बैठा दिया। सूर, सूरदास हो गये। चमड़ी की आँखें तो फूट गयीं, हृदय की आँखें खुल गयीं। यह है परिचय। भगवान जब तक अपना कुछ परिचय न दें तब तक पूर्ण विश्वास होता ही नहीं।

हमारे गुरु महाराज को तीन बार आकाशवाणी हुई थी– (1) इन महात्मा को भोजन कराओ; एक गलत निमन्त्रण की ओर कदम था, बड़ी जोर से आकाशवाणी हुई– (2) महान् पाप करने जा रहे हो, घोर नरक में जाओगे; और, (3) इस मन्दिर में तुम्हारे गुरु महाराज हैं। भगवान जब बुलाना चाहते हैं तो इस सृष्टि में से किसी को भी एक पल में बुला लेते हैं, तीर की तरह

उनकी गोद में गिरोगे। पूज्य महाराज जी कहा करें– जब तक भगवान आदेश न दें, घर छोड़ना पाप है। और आदेश दे दें तो घर में रहना पाप है। आज्ञापालन करना ही चाहिए। आज्ञापालन ही भजन है। एक प्रभु में श्रद्धा और समर्पण के साथ ओम् अथवा राम का जाप करो, चिन्तन करो। हृदय का मलाल जहाँ थोड़ा धुला, आत्मा और आपके बीच में जो माया का पर्दा पड़ा है, वह जहाँ थोड़ा हल्का हुआ तो भगवान बोलने लगते हैं, मार्गदर्शन करने लगते हैं, आकाशवाणी देने लगते हैं, स्वरूप भी धारण कर लेते हैं। हर हालत में जैसे बोध लगेगा वैसे आपको परिचय देंगे। यदि वह परिचय नहीं मिला, भगवान चलाते-फिराते, उठाते-बैठाते नहीं तो कैसे समझोगे कि हम कब सही चल रहे हैं, कब गलत। तोतारटन्त से क्या होगा!

'बिनु परिचय साहेब ह्वै बैठे'– संत शिरोमणि होकर बैठ गये, **'बिषय करे हंकारा।'** जानते नहीं हो, हमारे इतने हजार एकड़ का खेत है, मकान ऐसा है, **'बिषय करे हंकारा'**– सब विषय ही है।

ज्ञान ध्यान का मर्म न जानै, वाद करे हंकारा।।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

'ज्ञान'– जो याद कर लिया, वह ज्ञान नहीं।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। (गीता, 13/11)

अर्जुन! आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलना, उनके संरक्षण में चलते हुए परम तत्त्व परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन, दर्शन के साथ मिलनेवाली जानकारी ज्ञान है। सृष्टि में और जो कुछ है, अज्ञान है। हमारी पुकार ऐसी हो कि आत्मा जागृत हो जाय, हमारा मार्गदर्शन करने लगे, पढ़ाने लगे, यह ज्ञान की निम्नतम सीमा है। यह है भजन की जागृति, यहीं से परिचय शुरु होता है। उन्हीं के संरक्षण में चलते हुए परम तत्त्व परमात्मा का दर्शन, दर्शन के साथ मिलनेवाली जानकारी ज्ञान है। सृष्टि में और जो कुछ है, अज्ञान है। ज्ञान एक जागृति है।

ज्ञान ध्यान का मर्म न जानै, वाद करे हंकारा।

फिर ध्यान कैसे करें?, किसका करें? जब भगवान को हमने देखा ही नहीं तो चरणों का ध्यान कैसे करोगे?– यह अलग प्रश्न है। '**ज्ञान ध्यान का मर्म न जानै, वाद करे हंकारा**'– वाद-विवाद में अहंकार करते रहते हैं कि हमने शास्त्रार्थ में उसको रगड़ दिया।

भगवान अचिन्त्य है, अगोचर है। '**राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥**' (मानस,1/120/3)– भगवान बौद्धिक तर्क-कुतर्क से अतीत हैं। '**वाद करे हंकारा**'– यहाँ वाद-विवाद में, किस्सा कहते-कहते अहंकार हो गया कि हम इतने ज्ञानी। भगवान अचिन्त्य है, अगोचर है। इन्द्रियों से नहीं देख सकोगे, न बुद्धि से माप सकोगे।

अगम अथाह महा अति गहरा, बीज न खेत निवारा।
महा सो ध्यान मगन ह्वै बैठे, काट कर्म की छारा॥
अवधू भजन भेद है न्यारा।

'**अगम**'– परमात्मा अगम्य है, मनुष्य की पहुँच से बाहर है। 'अथाह महा अति गहरा' वह सबसे गम्भीर है, गहरा है, अथाह है। वह किसी बीज से नहीं जामता, स्वयंसिद्ध है। '**बीज न खेत निवारा।**'– भगवान न बीज है और न ही खेत में होता है। '**महा सो ध्यान**'– उस परमात्मा का ध्यान धरो, वह सर्वोपरि है, वह महान है। '**महा सो ध्यान मगन ह्वै बैठे**'– उसके ध्यान में मगन होकर बैठ जाओ, '**काट कर्म की छारा।**'– भ्रम की छारा कट जायेगी।

जिनके सदा अहार अन्त में, केवल तत्त्व बिचारा।
कहत कबीर सुनो भाई गोरख, तारु सहित परिवारा॥

इन्द्रियाँ आहार करती हैं।

पाँचों कुतिया राम की, करें भजन में भंग।
इनको टुकड़ा देइके, तब करिये सतसंग॥

पाँच कुतियाँ रामजी की हैं। आँखें रूप देखती हैं, कान शब्द सुनता है, जिह्वा रसास्वादन करती है, त्वचा स्पर्श करती है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द – पाँच ज्ञानेन्द्रियों की ये पाँच कार्य जिसका नाम तनुमात्रायें हैं, यह कुतिया हैं। कुतिया को कितना भी खिलाओ, तब भी वह मैले में मुँह जरूर डालेगी इसलिए कुतिया की संज्ञा दी। **'इनको टुकड़ा देइके, तब करिये सतसंग।'–** इनको वह टुकड़ा दो कि उसी में उलझकर संयत हो जाये, तब सत्य की संगत करो।

एक भजन में संत कबीर दास जी कहते हैं–

संतों घर में झगड़ा भारी।।

संत कबीरदास जी कहते हैं कि घर में बहुत झगड़ा है, बहुत बड़ा कोहराम मचा है, रात-दिन झंझट चल रही है। झगड़ने वाले कौन हैं?

रात दिवस नित उठि-उठि लागैं, पाँच ढोटा एक नारी।।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ – यह लड़के, और मायारूपी नारी। रात-दिन कभी चैन नहीं पड़ता, निद्रा में भी इनका झगड़ा चलता रहता है। स्वप्न में भी दृश्य उभरते रहते हैं। दिन में जो मन में होता है, वही रात में आता है। कभी संस्कारों में छिपी रील है, वह रात में आती है। चित्त शुद्ध हो जाने पर केवल भविष्य आता है। वह भक्त कभी स्वप्न नहीं देखता। तो ये **'रात दिवस नित उठि-उठि लागैं, पाँच ढोटा एक नारी।'**

और इन सबका रसोईंघर अलग-अलग।

न्यारे-न्यारे भोजन चाहत, पाँचो अधिक सवादी।

यह अलग-अलग भोजन चाहती हैं। आँखें दृश्य देखकर तृप्त होती हैं, तो कान शब्द सुनकर। बचपन में बच्चों ने माई की लोरी सुन ली तो मुस्कुराने लगे और सो गये, मम्मी को देख लिया खुश हो गये। जब बड़े हुए तो खिलौनों में उलझ गये। खिलौना छीन लिया तो पाँव पीटने लगे। और बड़े हो गये तो उनकी आँखों की देखने की दृष्टि बदल गयी। और जब बुढ़ौती आ गयी तो कहते हैं– जरा पनत का मुँह देख लेते फिर भले ही भगवान

उठा लेते। अवस्था के अनुसार आँखों के देखने का दृष्टिकोण बदलता ही जाता है।

सबका भोजन अलग-अलग है। जुबान को अनुकूल स्वाद का भोजन चाहिए, कानों को अनुकूल शब्द सुनने को चाहिए। जो बचपन में लोरी सुनते थे, बुढ़ौती में लड़के का प्रमोशन हो गया तो बुढ़उ उछल पड़े। अवस्था के अनुसार इनकी पकड़ भी बदलती जाती है। अलग-अलग भोजन.... त्वचा को स्पर्श, कान को शब्द, आँख को रूप, रसना को अनुकूल भोजन चाहिए, भरपूर भोजन चाहिए। **'पाँचो अधिक सवादी।'**– और इनको पूरा भोजन चाहिए। यदि कमी रह ही गयी तो पछतावा रहता है।

कोउ काहू का हटा न मानै, आपुहिं आप मुरादी॥

कोई किसी का अनुशासन नहीं मानती, अपनी मुराद पूरी होनी चाहिए।

दुरमति केर दोहागिन मेटे, ढोटहि चाप चपेरे।
कहे कबीर सो जुग जुग जीवे, जो घर की रारि निबेरे॥

जिनके सदा अहार अन्त में, केवल तत्त्व बिचारा।

संत कबीर इसी आशय को प्रकट करते हैं कि यह सब आहार था। यह आहार बन्द कर दिया, केवल एक आहार बढ़ गया, भजन जागृत हुआ, पहचान मिली, परिचय मिला। महानतम जो सत्ता है, उसके ध्यान में जब सुरत स्थिर हुई तो फिर एक आहार बचता है– प्रभु।

'जिनके सदा अहार अन्त में'

इस साधना के परिणाम में, अन्त में यह अवस्था आती है कि **'केवल तत्त्व बिचारा'**– केवल परम तत्त्व परमात्मा पर विचार कि अब प्रभु का क्या दृश्य आया?, अब प्रभु क्या कहते हैं?, स्वरूप कैसा?, व्यापकता कैसी?

कहत कबीर सुनो भाई गोरख, तारु सहित परिवारा॥
अवधू भजन भेद है न्यारा।

कबीरदासजी कहते हैं– सुनो गोरख!....

कबीरदासजी लगभग 600 वर्ष पूर्व हुए, गोरखनाथ 1200 वर्ष पूर्व हुए। कबीरकाल में गोरख थे ही नहीं। यहाँ गोरखनाथ से मतलब नहीं है। 'गो' माने मनसहित इन्द्रियाँ, 'रख' माने होता है रख-रखाव। 'गोरख'– जो इन्द्रियों का संयम साध ले गया हो। गोरक्ष, गो-संयम। विवेक, वैराग्य, साधना, सुमिरन से इसका संयम होता है। जिन्होंने गो-संयम साध लिया हो, उन्हें सम्बोधित करके कहते हैं–

कहत कबीर सुनो भाई गोरख, तारु सहित परिवारा।।

हृदय में, विचार में, चिन्तन में केवल एक तत्त्व पर जिसकी दृष्टि टिक गयी हो, यदि ऐसा कोई इन्द्रिय संयम वाला मिल जाये तो मैं परिवार सहित पार कर दूँगा।

भजन एक जागृति है, परिचय है। और जब तक वह परिचय नहीं मिला, चाहे साधु बनो, जटा रखाओ, मूड़ मुड़ाओ, यह ऊपर-ऊपर है, भीतर कुछ भी नहीं। वह जागृति किसी तत्त्वदर्शी सद्गुरु के द्वारा ही होती है, शून्य में नहीं फलती।

कहत कबीर सुनो भाई गोरख, तारु सहित परिवारा।।
अवधू भजन भेद है न्यारा।

इसलिए कोई इन्द्रिय-संयम का व्रत लेकर आ जाये, पूरा परिवार आ जाये, सबके लिए उद्धार है, मार्ग खुला है।

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ।।

अजब शहर में रंग महल में

सोइ सर्बग्य गुनी सोई ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।

(रामचरितमानस, 7/126/1-4)

कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहीं कोय।
धनवंता सोई जानिये, जाके राम नाम धन होय।।

सब आया एक ही घाट से, उतरा एक ही बाट।

गए एक ही रास्ते से! मरे तो या तो गिद्ध खा गए या पानी में डुबो दिया या फूँक दिया या गाड़ दिया, बात तो एक ही है।

या बीच में दुविधा पड़ गई, हो गये बाराबाट।।

इस जन्म और मृत्यु के बीच में दुविधा पड़ गई, बारह बाट हो गए। कोई हिन्दू हुआ, मुसलमान, ईसाई हुआ, जाति हुई, सम्प्रदाय हुआ, मज़हब हुआ, इसी थोड़ी-सी जिंदगी के बीच में **'हो गये बाराबाट'**। मृत्यु के बाद कोई रास्ता नहीं, मृत्यु के पहले कोई रास्ता नहीं, बीच में **'हो गये बाराबाट'**। इस बारह बाट को मिटाने का तरीका भी हृदय में है। भगवान हृदय से प्रेरणा करें तो दिखाई पड़ेगा, नहीं तो नहीं। तो–

हृदय माही आरसी, मुँह देखा नहीं जाय।
मुख तो तबहीं देखिए, तेरे दिल की दुविधा जाये।।

'हृदय माही आरसी'– आरसी मतलब दर्पण, **'मुँह देखा नहीं जाय'**– लेकिन हमें तो दिखाई नहीं देता। अर्जुन बचपन से साथ में था लेकिन दिखाई तब पड़ा जब भगवान ने दृष्टि प्रदान कर दी। तब डुगडुग काँपने लगा, रोमांच होने लगा, ज्वर चढ़ आया, वह स्तुति करने लगा। **'मुँह देखा नहीं जाय। मुख तो तबहीं देखिए, तेरे दिल की दुविधा जाये।'**

उपदेश सुनते-सुनते, एकादश अध्याय में आते-आते अर्जुन की दुविधा दूर हो गई। अर्जुन बोला– भगवन्! आप जो कुछ कहते हैं, सत्य है। मैं मानता हूँ, मेरा मोह से उत्पन्न अज्ञान नष्ट हो गया, किन्तु प्रभु! मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ, सुलभ हो सके तो कृपा करें। भगवान बोले– अर्जुन! तुम प्रिय सखा हो, अनन्य भक्त हो। ऐसा कुछ भी नहीं जो मैं तुझे ना दे सकूँ। लो, तुम मेरे इस स्वरूप को देखो, सर्वत्र फैले मेरे तेज को देख, अश्विनीकुमारों को देख, सप्तऋषियों को देख, चराचर जगत को एक स्थान पर देख।

अर्जुन आँखें मलता रह गया, कुछ दिखाई ही नहीं पड़ा। तब भगवान रूक गए, बोले– अर्जुन! इन चमड़ी की आँखों से तुम मुझे नहीं देख सकते, बुद्धि से नहीं माप सकते। लो, मैं तुम्हें वह दृष्टि देता हूँ, तुम मुझे देख सको। जहाँ दृष्टि-संचार हुआ, भगवान तो खड़े ही थे, नहीं थी तो आँख। जहाँ दृष्टि मिली तो ज्वर-सा चढ़ आया, जबान लड़खड़ा गई, लगा स्तुति करने–

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।। (गीता, 11/18)

अर्थात् **'मुख तो तबहीं देखिए, तेरे दिल की दुविधा जाये।'** लंबे सत्संग के बाद अर्जुन के दिल की दुविधा दूर हो गई।

दुनिया में जोड़ा करो, कितना भी जोड़ो, **'कहत कबीर सुनो भाई गुनिया, देह मुये पाछे मर गई दुनिया।'**– लौटकर कोई नहीं देखता है कि हमारी अर्जित की हुई प्रॉपर्टी और नाती-पनाती कहाँ गए?, क्या हुआ? **'ऊँचा महल चुनावते, करते होड़म होड़।'** कि उनसे हमारा मकान नीचा न रहे, और ऊँचा बने, और शानदार बने – होड़ लगाते रहते हैं। **'ते मन्दिर खाली पड़े, सब गये पल में छोड़।'**– एक पल में छोड़कर चले गए। 'क्या हुआ?' तो लोग बोले– भैया खा-पीकर सोये थे, सुबह उठे ही नहीं। आजकल बीमारी बहुत अच्छी है, सुबह आँख ही नहीं खुली भैया, सांस ही रुक गई, आजकल कहते हैं– हार्ट-अटैक हो गया।

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ चले, एक बँधे जंजीर॥

राजा भी जायेंगे, रंक भी जायेंगे और फकीर भी जायेंगे। वहाँ जाते समय सिंहासन भी एक ही है – अरथी। जंजीर भी एक ही है। वहाँ राजा के लिए अलग सोने की जंजीर नहीं होती। काल जब गला दबाता है तो इंदिराजी महल में मारी गयीं जबकि प्रधानमंत्री थीं। उनका लड़का भी माला पहनते-पहनते मारा गया, शृंगार, आभूषण ही मौत बन गया। '**एक बँधे जंजीर**'– काल जब आता है तो पाँव की चप्पल काल है, सुन्दर शय्या काल है, उत्तम भोजन काल है, पहरेदार काल है तो '**एक सिंहासन चढ़ चले, एक बँधे जंजीर।**'

मनुष्य की बनाई हुई संरचना का नाम है घाट।

घाटै पानी सब भरे, औघट भरे न कोय।
औघट घाट कबीर का, भरे सो निर्मल होय॥

ऐसा हमारे पूर्वजों ने किया, यह हमारी मर्यादा है, यह हमारी लोकरीत है, हमारी परम्परा है – यह घाट है। घाट-घाट सभी चलते हैं– '**घाटै पानी सब भरे**'। आजकल तो रोज ही नीति बनाई जाती है, संविधान बदलता ही रहता है, इसका नाम है घाट। महापुरुषों को यह घाट काम नहीं देती, उनकी घाट अलग है। भगवान जितना कहते हैं, उतना ही घाट, अवघट है। '**औघट घाट कबीर का, भरे सो निर्मल होय।**'– ज्यों-ज्यों भगवान आदेश दें, वैसे ही चलते जाओ, आदेश का पालन करते जाओ और तृप्ति होती जाएगी। वहाँ जो भरता है, वह निर्मल हो जाता है।

संसार एक व्यापार-स्थली है।

जो तू साँचा बाँणिया, तो साँची हाट लगाय।
अंतर झाड़ू देय के, कचरा देइ बहाय॥

अगर सच्चे व्यापारी हो तो हृदय में झाड़ू लगाओ और राग-द्वेष, आशा-तृष्णाओं का कचरा बहा दो; विवेक, वैराग्य, सम, दम, श्रद्धा, समर्पण– यह भर लो।

सहज शून्य में साईयाँ, ताका वार न पार।
धरा सकल जग धरि रहा, आप रहा निरधार॥

एक दिन उन महापुरुष ने भगवान को देख लिया, चित्तवृत्ति अभ्यास करते-करते शान्त हो गई, सुन्न हो गई, चित्त का निज स्वरूप शून्य हो गया, लक्ष्यमात्र का आभास रह गया, भगवान मात्र का आभास रह जाता है– **'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः'** (योगदर्शन, 3/3)– इसका नाम समाधि है। लेकिन आभास करने वाला चित्त जिंदा है। यह चित्त भी मिट जाए तो–

मन मिटा माया मिटी, हंसा बेपरवाह।
जाका कछु न चाहिए, सोई शाहंशाह॥

निरोध चित्त भी जिस क्षण मिटा.... मन का चित्त का पट पसार ही तो जगत था, जगत ही मिट गया, तहाँ सहज शून्य। न शुभ बचा, न अशुभ, परमात्मा ही शेष बचा रहता है। उन्हें जानकर उनमें ही प्रवेश मिल जाता है, स्थिति मिल जाती है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

(मानस, 2/126/3)

देखते देखते क्या से क्या हो गया।
गर खुदी गुम हुई तो खुदा हो गया॥

वहाँ सहज शून्य है। न प्रकृति का आभास है, न परमात्मा ही अलग रहा। केवल शून्य है, केवल स्वरूप मात्र शेष है। **'सहज शून्य में साईयाँ'**– केवल साँई मात्र शेष है, वही स्वरूप तुम्हारा है। **'और ताका वार न पार'**– उसकी उत्पत्ति कब से?, जियेगा कब तक?– आर-पार नहीं। वह अनन्त है, असीम है। **'धरा सकल जग धरि रहा'**– सारे जगत को धारण कर रखा है। आगे जगत कितना भी परिवर्तित होता रहे, फिर भी धरता ही चला जा रहा है, **'धरि रहा'**– धरे हुए है। और कहो, उनके सिर पर कोई बोझ है! असंभव! **'आप रहा निरधार'**– उनके ऊपर कोई बोझा ही नहीं, कोई भार नहीं, वह भगवान भारहीन हैं।

भगवान एक प्रत्यक्ष दर्शन है।

देखन सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहिं।
अनुभव सेवा पेखिये, समुझि रहो मन माहिं॥

'**देखन सरीखी बात है**'– वह केवल देखने योग्य बात है, '**कहन सरीखी नाहिं**'– वाणी का विषय है ही नहीं, कह कहाँ से दोगे। तो हम देखें कैसे? '**अनुभव सेवा पेखिये, समुझि रहो मन माहिं।**'– वह अनुभवगम्य है। भगवान बतावें, तुम समझो, तब है। भव से अतीत करने वाली जागृति का नाम अनुभव है। और अनुभव प्रगाढ़ सेवा से खिलता है, आपके अन्दर जागृत होता है। और जिसके हृदय में जागृत होता है, वही समझ पाता है– '**समुझि रहो मन माहिं।**'

संत कबीर का एक भजन है–

रंग महल में अजब शहर में, आजा रे हंसा भाई।
निर्गुण राजा पे सिरगुण सेज बिछाई॥
हाँ, हाँ रे भाई, सिरगुण सेज बिछाई॥
अरे, हाँ रे भाई, उना देवलिया में देव नाहीं,
झालर कूटे गरज कैसी–2
अरे, हाँ रे भाई, बेहद की तो गम नाहीं
निगुरा से सेन कैसी-2
अरे हाँ रे भाई, अमृत प्याला भर पाओ,
भाईला से भ्रांत कैसी-2
अरे हाँ रे भाई, कहे कबीर बिचारी,
सेन माही सेन मिली।

संत कबीरदास कहते हैं–

कबिरा यह जग कुछ नहीं, खिन खारा खिन मीठ।
काल जो बैठा मेड़ियाँ, आज मसाना दीठ॥

एक था दमिष्क का सुल्तान, बोला– कोई जीतने लायक न बचे। बड़ा विजेता था। एक दिन एक स्वप्न देखा– मौत का हाथ पड़ा पीठ पर... यूँ। उसने सुना– तुम बड़े वेग से मेरे पास आओ, ठीक समय पर आओ, ठीक जगह पर आओ। उसने सिर घुमाकर देख लिया मौत का चेहरा। भला मौत ही का चेहरा था, भय की वजह से जहाँपनाह की भयंकर चीख निकल पड़ी। पूरा पहल झनझना उठा, फौज तरतीबवार हो गयी, सेनापति सशस्त्र हो गये, बोले– जहाँपनाह! किधर से खतरा? सुल्तान ने स्वप्न का हाल बताया। अब स्वप्न वाले दुश्मन से फौज कैसे लड़े? सेनापति बोला– मौत का हाथ पड़ा, बोली, मेरे पास आओ, शीघ्र आओ, बड़े वेग से आओ तो जहाँपनाह! इस महल में कुछ न कुछ तो जरुर है। आप बड़े वेग से यहाँ से तेज-तर्रार घोड़े से कहीं दूर निकल जाइए, ये महल ही छोड़ दीजिए।

घोड़े का चुनाव सेनापतियों ने किया, अब जहाँपनाह बैठ गये घोड़े पर, रात को दो ही बजे दौड़ गये। दोपहर की चिलचिलाती धूप, उधर रेगिस्तान है तो रेगिस्तान में सपाट चले जा रहे थे। शाम होते-होते एक हल्की-सी वाटिका मिली, उसमें जाकर उतरे। न दस कदम चलने की ताकत घोड़े में थी, न सवार में घोड़ा चलाने की क्षमता बची थी। सुल्तान उतरकर बैठ गये, बोले– वाह, बहुत दूर आ गये। इतने में मौत का हाथ पड़ा– तुम बड़े वेग से आये, ठीक समय पर आये और ठीक जगह पर आये। और प्राण-पखेरु उड़ गये। भला मौत से भागकर कोई कहाँ जायेगा। कैसा भी रंग हो, एक पल में रुतबा उतर जाता है।

मुहैया जिन्हें सारे असबाब, मुलकी औ माली थे।
सिकन्दर जब गया दुनिया से, दोनों हाथ खाली थे॥

सारे मुल्कों के मालिक... मुकुटधारी उन्हें सलाम करते थे, सारे ऐश्वर्य की सामग्री उनके सामने थी, और **'सिकन्दर जब गया दुनिया से, दोनों हाथ खाली थे।'** सिकन्दर की मृत्यु के बारह वर्ष बाद उसका वंश जहाँ भी दुनिया में जिंदा था, उसी के सेनापतियों ने चोरी-चोरी जहर देकर मार डाला कि अभी कोई जिंदा है तो वह होगा मालिक और हम हो गए नौकर। जब

कोई बचेगा ही नहीं तो कौन कहेगा कि 'तुम हटो, यह जगह मेरी है'। सारे अखलिश वंश का सर्वनाश हो गया।

दुनिया में कोई रंग-रुतबा नहीं है। नश्वर कैसे शाश्वत होगा! जो परिवर्तनशील है, वह कैसे स्थायी होगा! लेकिन भगवान एक ऐसा रंग है– **'सब रंग कच्चा सांवरिया रंग पक्का।'**– इसलिए भगवान का रंग एक ऐसा महल है, सदा एकरस है, शाश्वत है, सनातन है। उनका निवास बड़ा अजीबोगरीब शहर है।

रंग महल में अजब शहर में, आजा रे हंसा भाई।
निर्गुण राजा पे सिरगुण सेज बिछाई॥
हाँ, हाँ रे भाई, सिरगुण सेज बिछाई॥

भगवान का रंग पक्का है, अपरिवर्तनशील है, शाश्वत है, वह कभी उतरता ही नहीं। एक बार प्राप्त हो गया तो सदा रहने वाला जीवन, सदा रहने वाली शांति और सदा रहने वाला धाम है। रंग महल है, अजीबोगरीब शहर है। **'आजा रे हंसा भाई'**– भाई तो सब है लेकिन **'हंसा भाई'**।

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥ (मानस, 1/6)

विधाता का प्रपंच गुण और दोषों से मिला हुआ है। वे संत हंस हैं जो ईश्वरीय गुणरूपी दूध को ग्रहण कर लेते हैं और विकाररूपी वारी का त्याग कर देते हैं। प्रकृति की विकाररूपी वारी का त्याग करके दूध को धारण करने की, ग्रहण करने की क्षमता वाले वह संत हंस है। शेर को घास खिलाओ, जियेगा? तीन दिन में मर जाएगा। ऐसे ही हंस की खुराक ही दूध है। ईश्वरीय गुणरूपी दूध को धारण करने की क्षमता वाला वह संत हंस है। यह महापुरुष कहते हैं– वह हंस मेरे भाई हैं– **'आजा रे हंसा भाई'**।

निर्गुण माने सत-रज-तम त्रिगुणमयी प्रकृति से गुणातीत। न सात्विक गुण काम करें, न राजसी, न तामसी गुण काम करें। जिस क्षण त्रिगुणमयी प्रकृति से अतीत हुआ तो परमात्मा का आलोक शेष बचा। **'निर्गुण राजा**

पे'– जहाँ गुनातीत हुआ तो वह साम्राज्य मिला **'सिरगुण सेज बिछाई।'**– स माने वह परमात्मा। ईश्वर जिन आलौकिक गुण धर्मवाला है, अमृत तत्व है, शाश्वत सत्य है, सनातन पुरुष है, अकाट्य है, अशोष्य है, अपरिवर्तनशील है। उसे शस्त्र नहीं काट सकता, अग्नि नहीं जला सकती, न होकर के किसी प्रकार परिवर्तित नहीं होने वाला है। वह परमात्मा सदा रहने वाला जीवन, शान्ति और धाम है। वह जिन गुणधर्मों वाला है, वे विदित हो जाते हैं। सगुण माने साक्षात्कार। वह सगुण हो जाता है। सगुण भर ही नहीं होता, भगवान की जो शय्या है, वह तुम्हें मिल जाएगी।

आजा रे हंसा भाई।
निर्गुण राजा पे सिरगुण सेज बिछाई।।

वह सगुण होगा,

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

(मानस, 2/126/3)

उन्हें पाकर जिन विभूतियों से भगवान युक्त हैं उन्हीं विभूतियों से युक्त स्वरूप तुम पा जाओगे, और मिट्टी के शरीर वाला, जन्म-मृत्यु का बंधन छूट जाएगा। **'सिरगुण सेज बिछाई।। हाँ हाँ रे भाई'**– हाँ भाई, सच है, दुरुह सत्य है।

उना देवलिया में देव नाहीं, झालर कूटे गरज कैसी–2
रंग महल में अजब शहर में आजा रे हंसा भाई।

वह ऐसा देवालय है, मेरे भाई लोगो! सुनो। भाई कौन है? **'हंसा भाई'**। सत्संगी लोगो! सुनो। वह भगवान का देवालय ऐसा है, वहाँ और कोई देवता है ही नहीं। उस देवालय, उस मन्दिर में उस धाम में देवता है ही नहीं तो झालर सजावट किस बात की करोगे?, अनुनय-विनय किससे करोगे?

'अरे हाँ रे भाई, उना देवलिया में देव नाहीं,
झालर कूटे गरज कैसी।'

उसे जानकर तो हम उसी स्वरूप में प्रतिष्ठित हो गये, अलग कोई

भगवान है ही नहीं। **'उना देवलिया में देव नाहीं, झालर कैसी'**, झालर, दिया-बत्ती कैसी? और **'गरज कैसी'**– चाहत, इच्छा कैसे प्रकट करोगे जब सुनने वाला कोई नहीं है। इस पहाड़ी से इच्छा करो, इस पेड़ से इच्छा करो, दरी से करो तो कुछ मिलेगा? गरज माने इच्छा, कामना, चाहत नहीं, ऐसा है वह रंगमहल।

रंग महल में अजब शहर में आजा रे हंसा भाई।
निर्गुण राजा पे सिरगुण सेज बिछाई।।
हाँ, हाँ रे भाई, सिरगुण सेज बिछाई।।

यह दुरुह सत्य है भैया। रोज कपड़ा, गद्दा बदलो, दरी बदलो, चादर बदलो, इसकी जरूरत नहीं। जो अजर-अमर है तो क्या खाक बदलोगे।

बेहद की तो गम नाहीं, निगुरा से सेन कैसी-2
रंग महल में अजब शहर में आजा रे हंसा भाई।

जो बेहद है, उसका स्वरूप कैसा है? वह असीम है, अनन्त है। हद माने सीमा। उसकी कोई सीमा ही नहीं। **'बेहद की तो गम नाहीं'**– वह बेहद है, वहाँ किसी की पहुँच ही नहीं। वह भाषाबद्ध नहीं किया जा सकता। वह अनिर्वचनीय है, लेखनीबद्ध नहीं किया जा सकता। लेकिन इस बात को गुरुमुख ही समझ पाता है। गुरुमुख को भगवान की ओर से संदेश मिलता है, इशारा मिलता है, वही समझता है। **'निगुरा से सेन कैसी'**– निगुरा को भगवान इशारा करते ही नहीं, वह गप्प ठोंकता रहता है। **'निगुरा से सेन कैसी'**– सेन माने इशारा होता है, भगवान की ओर से मिलने वाला संकेत होता है। **'रंग महल में'**– भगवान का रंग सच्चा रंग है। एक बार चढ़ गया तो फिर कभी नहीं उतरता।

भगवान ने कहा– वायुरहित स्थान पर रखे हुए दीपक की लौ सीधी जाती है, उसमें कम्पन नहीं होता। अच्छी प्रकार योगी के जीते हुए चित्त की यही परिभाषा है। न भला संकल्प उठे, न बुरा। श्वास एकदम बाँस की तरह खड़ी हो जाए, चित्तवृत्ति सिमटकर श्वास में समाहित हो जाए। श्वास आई तो

ओम्, गई तो ओम्-ओम्-ओम्। इस पर अर्जुन बोला– प्रभो! इस मन को तो मैं वायु से भी तेज चलने वाला समझता हूँ। शिथिल प्रयत्न वाला श्रद्धावान पुरुष आपको ना प्राप्त होकर किस दुर्गति को प्राप्त होता है? कहीं छिन्न-भिन्न बादल की तरह नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता? छोटी-सी बदली आसमान में आई, न पानी बरसा, न लौटकर मेघों से ही मिली। वह बेचारा न तो भोग ही भोग पाया और न भगवान से ही भेंट कर पाया, बेचारा बीच में समाप्त तो नहीं हो जायेगा?

भगवान् बोले– अर्जुन! भली प्रकार समझकर गीतोक्त कर्म का स्वल्प अभ्यास पार लग गया, दो कदम चलते बन गया, इस परम कल्याणकारी कर्म को करनेवाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। इस स्वल्प अभ्यास के प्रभाव से, जिसमें आरम्भ का नाश नहीं है, अगले जन्म में वह श्रीमान् लोगों के कुल में जन्म लेता है और आकण्ठ विषयों में डुबा हुआ होने पर भी अनायास ही पिछले जन्म में जहाँ साधना छूटी थी, उसके बुद्धि-संयोग को प्राप्त कर लेता है। फिर साधना यथावत् चलने लगती है, और कुछेक जन्म के अन्तराल में वहाँ पहुँच जाता है जिसका नाम परम गति है, परम धाम है, मेरा निज स्वरूप है। अर्जुन! मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (गीता, 6/35)

निःसन्देह मन वायु से तेज चलने वाला है, किन्तु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा भली प्रकार स्थिर हो जाता है।

चित्त को रोकने के लिए जो प्रयत्न किया जाता है, उसका नाम अभ्यास है। देखी-सुनी वस्तुओं में राग का त्याग वैराग्य है। कौन कहता है, धर्म बदल गया। ईश्वर को धारण करना धर्म है। स्वल्प अभ्यास भी पार लग गया तो उसका कभी विनाश नहीं होता। माया में ऐसा कोई उपाय नहीं, उसको नष्ट कर दे। उस स्वल्प अभ्यास के प्रभाव से अगले जन्म में जहाँ साधना छूटी थी, अभ्यास छूटा था, अनायास ही उसके बुद्धि-संयोग को प्राप्त कर लेता है, साधना आगे बढ़ती है।

अरे हाँ रे भाई,
अमृत प्याला भर पाओ, भाईला से भ्रांत कैसी-2
रंग महल में अजब शहर में आजा रे हंसा भाई।
निर्गुण राजा पे सिरगुण सेज बिछाई॥

उस रंगमहल में, अजीबोगरीब शहर में आ जाओ। हंसा लोगो! सत्संगियो! जिस क्षण गुणातीत हुए, ज्योतिर्मय परमात्मा प्रत्यक्ष हो जायेगा। प्रत्यक्ष माने सगुण होना। वह प्रत्यक्ष ही नहीं होगा तो उसकी जानकारी के साथ तुम्हें भी स्थान मिल जायेगा– **'सिरगुण सेज बिछाई'**।

वहाँ **'अमृत प्याला भर पाओ'**– मृत्यु से परे अमृत तत्व एक परमात्मा है। अर्जुन! सृष्टि मरणधर्मा है। आत्मा ही मृत्यु से परे हैं, अमृत तत्व है, शाश्वत सत्य है। अमृत का प्याला भरकर पाओगे। थोड़ा-बहुत नहीं, पूर्ण तृप्ति का पाओगे। और जो इस राह के पथिक हैं, **'भाईला से भ्रांत कैसी'**, **'अमृत प्याला भर पाओ'**– भाइयों में भ्रम कैसा! चले आओ, सब एक हो, एक ही जगह पहुँचना है।

अरे हाँ रे भाई,
कहे कबीर बिचारी, सेन माही सेन मिली।

हम कैसे समझें कि भगवान् सचमुच में ही मिल गए? भगवान से सन्देश, आकाशवाणी मिलेगी, उसका नाम है सेन। उनका सेन तो तब से मिलने लगता है जब से भजन जागृत होता है। उस सेन में से सेन मिली– तुम ये हो, तुम्हारा यह स्वरूप है, तुम इसी में रहो। **'कहे कबीर बिचारी, सेन माही सेन मिली।'** सेन जो मिल रही थी, उसी के अंतराल में **'सेन मिली'**– एक आकाशवाणी मिली, उसमें से एक संदेश मिला कि– तुम्हारा यही स्वरूप है, तुम इसी में रहो।

कबीर कहता है– **'गगन मंडल में पिया गोहराइ...'** यह सेन मिला, संदेश मिला, तो **'आवागमन की फिकर मिटी, छाओ छाओ रे फकीर गगन में कुटी॥'** उसी का पूरक है– **'कहे कबीर बिचारी, सेन माही सेन**

मिली।'– उत्कर्ष होते-होते उन्हीं अनुभवों के अन्तराल से अन्तिम निर्णय मिला कि तुम्हारा यही स्वरूप है, इसी में रहो।

वह भगवान का महल है, अजीबोगरीब महल है, **'आ जाओ रे हंसा भाई'**– जिस क्षण गुणातीत हो गये, साक्षात्कार होगा, तुम्हें वही स्थान मिल जाएगा जो शाश्वत, परम धाम है। इसके लिए आवश्यक है जागृति। यह जागृति परमात्मा के दो-ढाई अक्षर के ॐ, राम या शिव किसी एक नाम का जाप और किसी तत्त्वदर्शी सद्गुरु के चरणों में श्रद्धा और समर्पण से होती है। भजन की जागृति के क्रमशः चार प्रकार हैं– पहला स्थूलसुरा-संबंधी अनुभव होता है, आप भजन में बैठे हैं, कब आपका मन लगा, कब नहीं लगा, कहाँ भागने वाला है, इष्ट अंग-स्पंदन से संकेत करते जाते हैं। दूसरा अनुभव स्वप्नसुरा-संबंधी अनुभव होता है। सामान्य आदमी सांसारिक स्वप्न देखता ही रहता है लेकिन साधक स्वप्न कभी नहीं देखता, वह होनी देखता है। तीसरा अनुभव सुषुप्तिसुरा-संबंधी होता है। संसार में सभी प्राणी सो ही रहे हैं, रात-दिन जो करते हैं, स्वप्न ही तो है लेकिन सुषुप्ति का शुद्ध अर्थ है– जब परमात्मा के चिंतन की ऐसी डोरी लग जाय कि सुरत एकदम स्थिर हो जाय, शरीर जागता रहे, मन सुप्त हो जाय, ऐसी स्थिति में इष्ट एक दृश्यरूपक संकेत देते हैं जो सही दिशा प्रदान करता है, भूत-भविष्य से अवगत कराता है। गुरु महाराज कहते थे– डॉक्टर जैसे बेहोशी की दवा देकर उचित उपचार करके होश में लाता है, ठीक ऐसे ही सुषुप्ति में भगवान साधक को पढ़ा देते हैं, बता देते हैं।

चौथा अंतिम अनुभव है– समसुरा-संबंधी अनुभव। परम तत्त्व परमात्मा में सूरत सम प्रवाहित हो गयी, समत्व प्राप्त हो गया, उसके बाद भगवान साधक को उठते-बैठते-चलते-फिरते सर्वत्र से... पेड़ से, पशु से, आकाशवाणी से अनुभूति देने लगते हैं। इसी स्थिति को संत कबीर यहाँ कहते हैं– **'कहे कबीर बिचारी, सेन माही सेन मिली।'**– क्रमशः चलते-चलते साधक अपने स्वरूप की प्राप्ति कर लेता है, उसी में निमग्न रहता है।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

देखि-देखि जिय अचरज होई

प्रस्तुत है संत कबीरदासजी का एक छोटा-सा भजन–

देखि-देखि जिय अचरज होई,
यह पद बूझे बिरला कोई।
धरती उलटि अकासहिं जाय, चिंउटी के मुख हस्ती समाय॥
बिना पवन सौ पर्वत उड़ै, जीव जन्तु सब वृक्षा चढ़ै॥
सूखे सरवर उठै हिलोरा, बिनु जल चकवा करत किलोरा॥
बैठा पंडित पढ़ै पुरान, बिनु देखे का करत बखान॥
कहै कबीर यह पद जो जानै, सोई संत सदा परमान॥

ईश्वर-पथ में जब तक कुछ देखने को न मिले तब तक विश्वास होता ही नहीं, तब तक अन्दाजी तीर है, अन्धेरे में पाँव रखना है। जब तक भगवान की तरफ से कुछ विभूति देखने को न मिले, चमत्कार न मिले तब तक कभी विश्वास नहीं होता।

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

(मानस, 7/88/7-8)

जब तक कुछ जानने को न मिले तब तक प्रतीती माने विश्वास नहीं होता, और बगैर प्रतीती के प्रीति, हार्दिक लगाव नहीं होता, और प्रीति के बिना भक्ति स्थिर नहीं होती। सब भक्त ही तो बने हैं हल्का-सा किसी न झाँसा दे दिया तो आज भक्ति हनुमान जी की, कल हो गयी विन्ध्यवासिनी की। परसों बोले मजार में जाने से फायदा तो वहीं भीड़ लग गयी। वह यहाँ से वहाँ डगमगाता रहता है, भक्ति सुदृढ़ नहीं होती। हल्का-सा संकट पड़ा, सब भक्ति खत्म। फिर मनाने लगोगे– हे भगवान! हे दीनबन्धु! बस ये काम सफल हो जाये।

ईश्वर-पथ में तभी पूर्ण विश्वास होता है जब कुछ जानने को मिले। काकभुशुण्डि का पूर्ण विश्वास जब जान लिया तब, माता सती का विश्वास जान लेने पर। काकभुशुण्डि जन्म-जन्म के संत थे, भगवान के भक्त थे किन्तु ये अन्तिम प्राप्तिवाला जन्म था। अवध में भगवान का प्रादुर्भाव हुआ, काकभुशुण्डि भी कौवे के रूप में कभी फुदककर इधर बैठे, कभी उधर बैठे। भगवान राम ने पकड़ने के लिए भुजा पसारी तो वह उड़कर भागा। तब मालपुआ दिखाया तो कौवा करीब आया लेने के लिए। एक हाथ से मालपुआ दिखाया, दूसरे हाथ से पकड़ना चाहा, तब छलककर भागा। भगवान का हाथ पीछे लगा ही रह गया–

सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि।।

(मानस, 7/79 ख)

सातवाँ आसमान छेदकर चले गये, वहाँ जाकर उड़ते हुए पीछे घूमकर देखा तो रामजी की भुजा और उनमें केवल दो अंगुल का अन्तर था, अब पकड़ा कि तब पकड़ा। और आगे कोई जगह ही नहीं थी, जाते कहाँ! हताश होकर जहाँ आँख बन्द किया तो इतने में जब आँख खुली तो अपने को अयोध्या में पाया। भगवान मुस्कुराये, चले गये मुख में (हृदय में)।

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।।

(मानस, 7/79/3)

उदर में (हृदय में) अनन्त ब्रह्माण्ड को देखा।

अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला।।

(मानस, 7/79/6)

असंख्य लोकपाल, यम और अनन्त काल खड़े थे। जैसे हर जिले में पचास थानेदार खड़े रहते हैं, इस काल की बस इतनी ही औकात है। और–

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता।।

(मानस, 7/80/1)

हर लोक का अलग एक विधाता नियुक्त था, अलग विष्णु नियुक्त थे, अलग एक शंभु नियुक्त थे। अनन्त ब्रह्माण्ड में अनन्त ब्रह्मा-विष्णु-महेश।

अन्त में काकभुशुण्ड ने देखा– हर भुवन में अयोध्या थी लेकिन अलग आकार-प्रकार की थी–

अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी।।

(मानस, 7/80/6)

हर भुवन में अयोध्या अलग, सरयू अलग प्रकार की, नर-नारी अलग प्रकार के।

दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता।।

(मानस, 7/80/7)

दशरथ अलग प्रकार के, कौशल्या अलग प्रकार की, भरत इत्यादि भ्राता अलग प्रकार के।

भिन्न भिन्न मै दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन।। (मानस, 7/81क)

असंख्य भुवनों में घूमे, करोड़ों प्रकार के शंकर, करोड़ों विष्णु, करोड़ों ब्रह्मा, करोड़ों अयोध्या, **'भरतादिक भ्राता'**– कौशल्या इत्यादि माता सब भिन्न-भिन्न, अलग-अलग प्रकार का देखा, किन्तु **'राम न देखेउँ आन'**– राम बस केवल एक प्रकार के। भगवान अपरिर्वतनशील हैं। ये नहीं कि त्रेता में जवान रहे हों, अब थोड़े बाल पक गये हों – ऐसी बात नहीं। एकरस, अपरिवर्तनशील, सदा एक। उनमें घट-बढ़ नही होता– **'राम न देखेउँ आन'**। फिर काकभुशुण्ड कहते हैं–

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ।। (मानस, 7/80क)

जो जिन्दगी में न कभी देखा, न कानों से कभी सुना और न मन में ही समाता है, ये बवाल क्या? **'सो सब अद्भुत देखेउँ, बरनि कवनि बिधि जाइ।'** भगवान पुनः मुस्कुराये तो बाहर आ गये, सिर पर हाथ रखा तो सारा

ज्ञान पा गये। भगवान अपना बोध कराते हैं तो पहले आपमें दृष्टि बनकर संचालित हो जायेंगे, सामने स्वयं। तभी वह पकड़ में आयेंगे, नहीं तो कभी नहीं। ये चमड़ी की आँखें उन्हें नहीं देख सकतीं। यदि आँखें ही देख पाती तो सूरदास जैसे अन्धे भगवान को कैसे पा जाते, बहिरे कैसे पा जाते! ये शरीर भजन करने के लिए आपको निवास-स्थान मिला है, एक कुटीर, एक आशियाना मिला है। पिछले जन्म में कोई और ही शरीर था, आगे कोई और ही होगा। भजन जब भी होता है तो इष्टोन्मुखी लगन जागृत होती है, वो कराती है।

'सप्ताबरन'– सात आवरण योग पथ की क्रमोन्नत सात भूमिकायें हैं। पहली 1. शुभेच्छा– सत्य के प्रति इच्छा, 2. सुविचारणा– उसके प्रति विचार मन्थन। 3. तनुमानसा– पहले शरीर में तन वाला था, शरीर में ही अपने आपको मानता था कि हम इतने हैं, अब मन के अन्तराल में तन वाला हो गया। 4. सत्वापक्ष– सत्य है, तत्त्व है, उस पक्ष का सुदृढ़ होना, विश्वास का जमना। 5. असंसक्ति– साधना पथ में कदम-कदम पर संगदोष है। कैसा भी संग क्यों न आवे, संग आवे और असंग रहने की क्षमता। 6. पदार्थभावनी– लेकिन एक स्तर ऐसा आता है– पदार्थ का अभाव। संसार में जो कुछ है पदार्थ है, भोग्य सामग्री है, इसका अभाव। संसार था ही नहीं। 'बिना गोपाल ठौर नहिं कतहूँ, नरक जात धौ काहीं?' बगैर गोपाल के इंच भर कहीं जगह कहीं नहीं तो भला नरक कहाँ चला जायेगा। उन प्रभु के करीब की अवस्था आ जाने पर–

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।

(मानस, 2/130/7)

न स्वर्ग, स्वर्ग के रूप में रह जाता है जिसकी हम कामना करें। न नरक-नरक के रूप में रह जाता है जिससे हम भयभीत हों और न बैकुण्ठ बैकुण्ठ के रूप में रह जाता है। जहाँ भी दृष्टि पड़ी **'जहँ तहँ देख धरें धनु बाना'**– अपने आराध्यदेव को खड़ा पाया। उस समय इस पदार्थ का भोग में संसार का अभाव, ये एक भूमिका पदार्थभावनी।

अन्तिम भूमिका होती है– 7. तुर्यगा। क्रमशः जहाँ चिन्तन चलेगा, साधक आकाशवत् होता चला जायेगा। कांक्षा ही काकभुशुण्ड है। कौवा कहीं भजन करता है क्या! ये एक उदाहरण है, प्रतीकात्मक है। ईश्वर को पाने के लिए प्रबल इच्छा, कांक्षा काकभुशुण्ड है, कांक्षा प्रथम सीढ़ी पर है। जहाँ संयम सधा, थोड़ा आकाशवत् हुआ, आकाश कहते हैं पोल को, शून्य को, चित्त संकल्प-विकल्प से रहित होकर शून्य में, अधर में टिकने की, विचरने की क्षमता पा जाये इसका नाम है आकाशवत् होना। तो पहली भूमिका में थोड़ा आकाशवत् हुआ, दूसरा और सातवाँ आवरण भेदा तो अन्तिम सहज आकाश की प्रवेश आ गयी, भगवान का हाथ पास में था। भगवान का हाथ यदि पीछे मार्गदर्शक के रूप में न हो तो वहाँ पहुँचेगा ही नहीं।

अब भी भगवान अलग और मैं अलग, अब भी ये बवाल जारी।

ब्रह्म लोक लगि गयउँ मैं, चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहि मोहि तात॥

(मानस, 7/79 क)

'जुग अंगुल'– जुग माने एक तो दो (2) होता है। मैं अलग हूँ, स्वामी अलग हैं, बस केवल इतना भेद रह गया। जब सातवाँ आवरण छेद दिया तो साधक और स्वामी में आमना-सामना। बस इतना ही भेद रह गया, बाकी सारे भेद मिट गये। संसार का भी अभाव हो गया लेकिन दो हैं– हम अलग खड़े हैं, वो अलग है।

भगवान मुस्कुराये तो उदर में पहुँच गये। भगवान के हृदय-देश में अनन्त ब्राह्मण्ड...

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥ (मानस, 7/80क)

वह वाणी का विषय है ही नहीं, अनिर्वचनीय है। न इन आँखों के देखने से बोध लगा, न कानों के सुनने से, और न वाणी में ही क्षमता है। वह अनिर्वचनीय है। इसी आशय का संत कबीरदासजी का एक भजन है–

देखि-देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझे बिरला कोई॥

'देखि-देखि'– सुन-सुनकर नहीं, प्रत्यक्ष देखकर। संत कबीरदासजी की साधना उस ऊँचाई पर पहुँच गयी, कुछ अजीबोगरीब दिखाई पड़ने लगा, बोले– मैं कैसे व्यक्त करुँ, वाणी का विषय नहीं। हृदय आश्चर्य से भर गया, बोले– अरे, इतना विलक्षण!

देखि-देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझे बिरला कोई॥

किन्तु इस पद को कोई विरला ही बूझो। बूझो माने समझो। बूझतानि, बूझतबानी, बूझगइनी, मतलब आप समझते हैं, समझ गये। बूझना माने समझना होता है। इस पद को कोई विरला अधिकारी ही समझ पाता है, सब नहीं। भला था क्या? क्या आपने देख लिया? तो–

'धरती उलटि अकासहिं जाय'

धड़ धरती का एकै लेखा, जो बाहर सो भीतर देखा।

धड़ कहते हैं इस शरीर को, धरती कहते हैं इस पृथ्वी को। दोनों का एक ही माप-तौल है, जो कुछ बाहर देखने को मिलता है सब हृदय में देखने को मिला।

तुलसीदासजी का कथन है– एक वृक्ष के अन्दर नाना प्रकार के फर्नीचर, एक तन्तु के अन्दर नाना प्रकार के वस्त्र, ठीक इसी प्रकार मन के अन्तराल में विधाता की अनन्त सृष्टि के स्वरूप छिपे हुए हैं–

बिटप-मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये॥

(विनयपत्रिका, 124)

एक वृक्ष में नाना प्रकार के फर्नीचर, चौखट, किवाड़ी बनाओ, दियासलाई बनाओ, कुछ भी बना डालो, बना ही तो रहे हो रात-दिन। एक सूत के तन्तु में नाना प्रकार के वस्त्र... जनाना, मर्दाना, पैरासुट कुछ भी बना डालो, दरी बनाओ, उस छोटे से तन्तु में सब छिपा हुआ है। ठीक इसी प्रकार मन के अन्तराल में विधाता की सृष्टि में अनन्त तन समाये हुए हैं, जब

जिसका नम्बर आता है पिण्डरूप में फेंकता रहता है। 'प्रगटत अवसर पाये'– अवसर पाकर प्रकट होता है। इतना ही नहीं–

असन, बसन, पसु बस्तु बिबिध बिधिसब मनि महँ रह जैसे।

(विनयपत्रिका, 124)

असन माने भोजन, बसन माने वस्त्र, नाना प्रकार के पशु, विविध प्रकार की वस्तुएँ, इज्जत, प्रतिष्ठा, शोरुम, घर-द्वार, सवारी-साधन एक बेशकीमती मणि में छिपा है। क्यों? क्योंकि उसकी कीमत ही कई करोड़ में है। उसे यदि वो मिल जाए तो सारी व्यवस्था एकदम हल हो जायेगी। ठीक इसी प्रकार–

सरग, नरक, चर-अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे॥

(विनयपत्रिका, 124)

स्वर्ग, नरक, विविध लोक और परम धाम परमात्मा मन के अन्तराल में निवास करता है। तो **'धड़ धरती का एकै लेखा, जो बाहर सो भीतर देखा'**– जो कुछ बाहर में सुनने में आता है, जो देखने में आता है जिसकी कल्पना भी नहीं कर पा रहे हो, वो सब मन के अन्तराल में विद्यमान है, एक ही मापतौल है। तो–

'धरती उलटि अकासहिं जाय'

पहले हम सब दुनिया की ओर दौड़ रहे हैं, इधर व्यवस्था कर रहे हैं, उधर व्यवस्था कर रहे हैं। इधर भंग हो जाती है तो उधर नया कारोबार शुरु करते हैं, उधर जुगाड़ लगा रहे हैं, कहीं भैंस बेच रहे हैं, कहीं जीप खरीद रहे हैं.... उन सब ओर से चित्त को समेटकर चित्त जब हृदय में चला गया, इस शरीररूपी धड़-धरती का एक ही माप-तौल, शरीररूपी पृथ्वी के अन्तराल में जब सुरत चली गयी, धरती में उलट गयी मन की दृष्टि। तो–

'धरती उलटि अकासहिं जाय'– जब बाह्य विषयों को सेवन मन करता ही नहीं, तो वो संकल्प-विकल्प से रहित शून्य में, अधर में स्थिर होता जाता है। आकाश कहते हैं– शून्य को, पोल को। मन के अन्दर भीड़ लगी

है, पूरे संसार की लहरें उठती रहती हैं। वो लहरें शान्त हो गयी, संकल्प-विकल्प से रहित शून्य में शान्त, सम में स्थिर होता जाता है, इसका नाम है आकाशवत् अवस्था। आकाशवत् अवस्था सबके लिए सुलभ है। **'कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ'**– सृष्टि में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं जन्मा जिसको बगैर आकाश के शान्ति मिली हो, थोड़ी राहत मिली हो, छुट्टी मिली हो। आकाश कोई ऐसी सत्ता है जहाँ जाकर इस मानव को विश्राम प्राप्त होता है, अवकाश मिलता है। तो– **'धरती उलटि'**– चित्त को सब ओर से, इन्द्रियों से, वासनाओं से समेटकर, मन को सब ओर से समेटकर चिन्तन में लगाओ। जहाँ अभ्यास करते-करते सुरत, मन की दृष्टि अन्दर स्थिर हुई तो आकाशवत्।

धरती उलटि अकासहिं जाय, चिंउटी के मुख हस्ती समाय॥

चित्त तो इतना बड़ा जितना बड़ा संसार। तुलसीदासजी कहते हैं– **'तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै'**– तुलसीदासजी का कथन है– चित् का पट पसार ही जगत है लेकिन ये बात अभ्यास करने से समझ में आते-आते ही समझ में आती है, कहने से नहीं समझ में आती। चित्त तो इतना बड़ा जितना बड़ा संसार, लेकिन सब ओर से सिमटकर जब हृदयदेश में स्थिर हो गया, इतना सूक्ष्म हो जाता है जितनी बारीक वाली चिंउटी। योगी के जीते हुए चित्त को कबीर इत्यादि महापुरुषों ने सूक्ष्म चिंउटी की संज्ञा दी है। मानस में इसकी संज्ञा है मच्छर की।

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥

(मानस, 5/3/1)

हनुमानजी ने मच्छर के समान रूप धारण किया, भगवान का स्मरण करके लंका की ओर चले तो लंकिनी की पड़ी दृष्टि, मारा एक लात– क्यों रे दुष्ट! मेरा तो भोजन ही है जहाँ तक चोर आवें उनको पकड़-पकड़कर खाया करूँ, मुझे चकमा देकर जा रहा है! हनुमानजी दो कदम पीछे हट गये, सोचा– ये मच्छर बनने से काम नहीं चलेगा, तुरन्त अपने स्वरूप में आ गये।

मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी॥

(मानस, 5/3/4)

हनुमानजी ने हल्का-फुल्का वार नहीं किया, वो पद प्रहार से समझ गये कि ये निशाचरी महापराक्रमी है। देखने की औरत है, महाभयंकर है। **'मुठिका एक महा कपि हनी'**– महान मुष्ठिका प्रहार किया। वह बड़ी बलशालिनी थी, धरती में **'ढनमनी'**– फुटबाल की तरह लुढ़कने लगी।

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका॥

(मानस, 5/3/5)

पुनः सँभलकर खड़ी हो गयी। हनुमानजी की मुष्ठिका लगी तब भी खड़ी हो गयी। लोग कहते हैं– मच्छर का रूप बना लिया तो अँगूठी कहाँ गयी।

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥

(मानस, 5/12/3)

माया से उसको छोटा-बड़ा नहीं बनाया जा सकता। और भगवान को जीतकर कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता। उसे भगवान का अन्तरंग भक्त ही प्राप्त कर सकता है। तो मान लो, मच्छर हो गये, अँगूठी तो छोटी होगी नहीं, वो तो उतनी ही रहेगी। मच्छर भी हो गये होंगे तो लपझप चमकती रही होगी हनुमानजी के डंक में। ऐसी बात नहीं है। मुद्रित मन ही मुद्रिका है। मन कभी मुद्रित नहीं होता। मन वायु से भी तेज चलने वाला है, वेगवान है। सब ओर से सिमटकर के जब मुद्रित हो जाये, एक मुद्रा में प्रवाहित हो जाय, वैराग्यवान् पुरुष ही इस स्थिति को प्राप्त कर सकता है। वैराग्यरूपी हनुमान। मुद्रित मन ही मुद्रिका है। उस समय मन का स्वरूप इतना सूक्ष्म होता है जितना बारीक व्वाला मच्छर। यहाँ मच्छर की संज्ञा दी है, और संत कबीरदासजी ने सूक्ष्म बारीक चिंउटी की संज्ञा दी।

सुरत धरती में उलट गयी, मन स्थिर हो गया, आकाशवत् हो गया, शून्य में टिकने की क्षमता पा गया तहाँ फिर चित्त इतना सूक्ष्म है जैसे बारीक वाली चिंउटी तो,

'चिंउटी के मुख हस्ती समाय'

ऐसे निरोध चित्त में, उसके मुख में हाथी समा गया। एक तो हाथी जानवर है, एक हस्ती होती है ताकत। हस्ती अर्थात् 'मैं'पन का भाव खतम हो गया।

पहले हस्ती थी– मैं राजा हूँ, मैं धनवान हूँ, मैं फलाना हूँ, लेकिन भजन के द्वारा मिलनेवाली हस्ती होती है कि मैं ज्ञानी हूँ, मैं ध्यानी हूँ, मुझमें ये गुण है.... ये भी हस्ती है। मैं फलाने घराने का हूँ, तब तक यह जड़ अभिमान पीछा करता रहता है। हस्ती माने शक्ति। चित्त जब इतना सूक्ष्म हो गया, भगवान के तद्रूप खड़ा हो गया तब सब फीका। भगवान के समाने ध्यान-समाधि कुछ नहीं। वो तो वहाँ तक चलने का रास्ता था। रास्ता खतम। **'चिंउटी के मुख हस्ती समाय'**–चित्त इतना निरोध हो गया भगवान के सम्मुख खड़ा हो गया, तहाँ मैं ध्यानी हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं समाधिस्थ हूँ, ये विभूति, वो विभूति, वो भी हस्ती, पॉवर उसमें समा गयी, देहाध्यास भी खतम।

जहाँ शून्य में सुरत टिकी, तहाँ चित्त चिंउटी की तरह बारीक हो गया। ऐसे निरुद्ध चित्त के अन्तराल में अपनी सारी हस्ती समाप्त हो गयी। वो जान जाता है कि कर्ता-धर्ता भगवान हैं, मैं तो केवल उनके हाथ का एक यंत्र मात्र हूँ, तो– **'चिंउटी के मुख हस्ती समाय।'**– उस समय स्वर के अन्तराल में विषयरूपी वारि का प्रवाह – आसुरी सम्पद्, ईश्वरीय भक्तिरस का प्रवाह – दैवी सम्पद्, जब वह हस्ती भी समाहित हो गयी,

बिना पवन सो पर्वत उड़ै, जीव जन्तु सब वृक्षा चढ़ै।।

वहाँ न भले संकल्प-विकल्प की लहर उठती है कि भगवान ऐसे, साधना ऐसी; न बुरे संकल्प-विकल्प उठते हैं कि ये करेंगे वो करेंगे। संकल्प-विकल्प की लहर शान्त हो गयी, पवन (हलचल) समाप्त हुआ– 'बिना पवन सो पर्वत उड़ै'।

लाखों योजन पर्वत ऊँचा, घाटी विकट करूर।
करि करि जतन फिरें बहुतेरे, पहुँचे बिरला शूर।।
निरंजन पुरका पंथ कठिन है दूर।

निरंजन, निराकार उस परमात्मा के घर का पंथ कठिन है। लाखों योजन ऊँचे पर्वत हैं, घाटी विकट है, करुर है, यतन करके बहुत से लौट आये, विरला शूर पहुँच ही जाता है। और ये पर्वत सहज ही हट जायेंगे, जब अभ्यास इतना है– **'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।'**– लक्ष्यमात्र का आभास रह जाय, चित्त का निज स्वरूप शून्य हो जाए, न भले संकल्पों का अभ्युदय होता है, न बुरा, न वायुमण्डल के संकल्प जो दुनिया में फैले हैं, न अन्दर प्रवेश कर पाते हों। पवन खत्म। संकल्प-विकल्प की लहर खत्म। तो– **'बिना पवन सौ पर्वत उड़ै'**– तहाँ ये जो विशाल घाटियाँ जो भगवान और आपके बीच में रुकावट थीं वो सामने से उड़ गये।

'जीव जन्तु सब वृक्षा चढ़ै'– **'जीव जन्तु'**– सबमें जो जीव भाव था, कभी ये योनि कभी वो योनि, जो सब संस्कार थे, संस्कार ही तो जीव का रूप लेता है, वो सब **'संसार बिटप नमामहे'**– वृक्ष पर चढ़ गये– **'सब वृक्षा चढ़ै'**।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! संसार एक पीपल सदृश वृक्ष है–

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ (गीता, 15/1)

ऊपर परमात्मा जिसका मूल है, नीचे कीट-पतंग-प्रकृति जिसकी शाखा-प्रशाखा है, वेद जिसके पत्ते हैं, जिस अन्तिम कोपल हम खड़े हैं हमारा चिन्तन, पुकार ऐसी हो कि भगवान उतर आयें, हमें पुकारे, हमें समझायें, हमें रास्ता बताये। वेद अपौरुषेय है। भगवान के मुख का सीधा प्रसारण है उसका नाम वेद है। वह वाणी उतरने लगे, समझते जाओ, चलते जाओ। उन्हीं के निर्देशन में चलते हुए जहाँ मूल का स्पर्श किया तो **'धाम'**– स्थिति मिल गयी। तब तक हम जीव थे, लेकिन मूल का स्पर्श किया तो धाम स्थिति मिल गयी तो **'जीव जन्तु सब वृक्षा चढ़ै।'**

अब संसार समुद्र सूख गया। उस समय स्वर के अन्तराल में विषयरूपी

वारि का प्रवाह – आसुरी सम्पद्, ईश्वरीय भक्तिरस का प्रवाह – दैवी सम्पद् का प्रवाह भी शांत हो गया।

सूखे सरवर उठै हिलोरा, बिनु जल चकवा करत किलोरा।।

इस वरिष्ठ स्वर की अवस्था में समुद्र सूख गया। 'न ज्ञानं न ध्यानं न जोगं न जपं, चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।' जब स्वर में से दोनों वृत्तियाँ शान्त हो गयीं, सूख गयीं, पार करने वाली वृत्ति भी शान्त, इधर विकारों में घसीटने वाली विषयरूपी वारि भी शान्त, ज्ञानरूपी गंगा का प्रवाह भी शान्त। तो–

सूखे सरवर उठै हिलोरा, बिनु जल चकवा करत किलोरा।।

जहाँ सरवर सूख गया, स्वर में ये दोनों वृत्तियाँ सूख गयीं, **'उठै हिलोरा'**– भजन में बड़ी मस्ती है, बड़ा आनन्द है। उस समय वो आनन्द, वो मस्ती, अनन्त सुख, अनन्त शान्ति वो सब लहरें उठने लगती हैं। कब? जब दोनों वृत्तियाँ शान्त हो जाय।

सूखे सरवर उठै हिलोरा, बिनु जल चकवा करत किलोरा।।

कबीर गुरु मुख चन्द्रमा, सेवक नयन चकोर।
आठ पहर निरखत रहे, गुरु चरनन की ओर।।

कबीरदासजी का कहना है– गुरु मुख ही चन्द्रमा है, सेवक के नेत्र चकोर हैं, **'आठ पहर निरखत रहे गुरु मुरत की ओर'**– उस ईश्वर-दर्शन के लिए जो मन चकोर था, अन्य सारे रस छोड़कर केवल एक प्रकाश उस चाँदनी के लिए विकल था। जब दोनों वृत्तियाँ शान्त हो गयीं तब हिलोरे उठने लगे, ईश्वरीय भक्ति की मस्ती उठने लगी। और– **'बिनु जल चकवा करत किलोरा'**– विषयवारि, भक्तिरस दोनों शुष्क हो गया, तब वो जो चकोर था, किलोलें करने लगा, अब न गिरने का डर है न प्राप्ति की चिन्ता। तो– **'बिनु जल चकवा करत किलोरा'**– मन ही चकोर है, उस समय किलोलें करने लगता है। और इतना ही नहीं, वो हो जाता है पूर्ण ज्ञाता, वह हो जाता है पण्डित।

बैठा पंडित पढ़ै पुरान, बिनु देखे का करत बखान॥

वह स्थिर हो गया। अब तक चंचल था चलायमान था, अब स्थायित्व ले लिया। उसका आसन सुदृढ़ हो गया, न ये वृत्ति खींचती है, न वो। तो बैठा है पण्डित है, पूर्ण ज्ञाता है। **'पढ़ै पुरान'**– **'प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी।'**– वह परमात्मा पुराण पुरुष है, उनकी विधि को पढ़ने लगता है। भगवान के अन्तराल में क्या रहस्य छिपा है, व्यक्त करने लगता है। कबीरदासजी कहते हैं–

मसि कागद छूवों नहीं, कलम गहो नहिं हाथ।
चारों युग का महातम, कबीर मुखहि जनाई बात॥

वह वर्णन करने लगता है, वह पण्डित है। पण्डित एक स्थिति का नाम है। धोबी के घर में जन्म गया तो बगैर किसी परिश्रम के एक डिग्री मिल गयी 'धोबी'। तिवारी के घर में जन्म गया तो बगैर किसी परिश्रम के एक डिग्री मिल गयी 'तिवारी'। शास्त्र के अनुसार, गीता के अनुसार पण्डित वह है–

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ (गीता, 4/19)

अर्जुन! एक आत्मा ही सत्य है। आत्मदर्शन की नियत विधि, योगविधि यज्ञ है और उस विधि का कार्यान्वित करना कर्म है। कर्म माने आराधना, कर्म माने चिन्तन। रंचमात्र भी त्रुटि न रखकर सम्पूर्णता से आरम्भ किया हुआ कर्म, क्रिया इतनी उन्नत हो गयी कि– **'कामसङ्कल्पवर्जिताः'**– काम माने कामनायें, इच्छायें.... इनसे ऊपर उठ गया। **'सङ्कल्पवर्जिताः'**– मन का ही दूसरा नाम संकल्प है। संकल्प-विकल्प से ऊपर उठना ही मन की निरोधावस्था है। कामना और संकल्प से क्रिया ऊपर उठ गयी तो– **'ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं'**– उस वक्त वो जिसको जानना चाहता था उसका ज्ञान हो जाता है। उस जानकारी के साथ ही कर्म सदा के लिए जल जाते हैं। वो जो जन्मान्तरों की रील थी, वो कर्म जो नियत कर्म करना था, साधना-पद्धति थी, दोनों **'दग्धकर्माणं'**। जिसे पाना था पा ही लिया, कर्म करके ढूँढ़ोगे किसको? आगे है कौन?, आपकी सुनेगा कौन? मन के निरोध और विलय काल में ज्ञान की अग्नि में

कर्म सदा के लिए जल जाते हैं। **'तमाहुः पण्डितं बुधाः'**– इसी स्थिति वालों को बोधस्वरूप महापुरुषों ने पण्डित कहकर सम्बोधित किया है, वह पण्डित है वो पूर्ण ज्ञाता है। इस महापुरुष की रहनी क्या होती है? उसकी दृष्टि कैसी होती है?

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (गीता, 5/18)

विद्याविनययुक्त ब्राह्मण में और चाण्डाल में, जो एक सियार टाँगकर घूम रहा है, कुत्ता तथा गाय में, विशालकाय हाथी में **'पण्डिताः समदर्शिनः'**– जो पण्डित है, प्रत्यक्षदर्शी है, दर्शन के साथ अनुभूति है, समान दृष्टि वाले होते हैं। उनकी दृष्टि में विद्याविनययुक्त ब्राह्मण न कोई विशेषता रखता है, न वो चाण्डाल कोई हीनता रखता है, न कुत्ता अधर्म है, न गाय धर्म है, न विशालकाय होने से हाथी ही कोई विशेषता रखता है। कारण कि उन महापुरुष की दृष्टि चमड़ी पर नहीं पड़ती, आपके कारोबार पर नहीं पड़ती, सीधे आत्मा पर पड़ती है। वो जानते हैं कि विद्याविनयसम्पन्न इस लक्ष्य के थोड़ा करीब है, और जिसे हम चाण्डाल कहते हैं वो लक्ष्य से थोड़ी दूरी पर है, लेकिन है उसी पथ का पथिक। कोई अन्तर ही नहीं रहता। यह पण्डित की दृष्टि होती है। और सचमुच जब वह जल ही गया, जल समाप्त, विषयरूपी वारि समाप्त। और जिस ब्रह्मपीयूष, ज्ञानामृत को ढूँढ़ रहा था, वह भी समाप्त। जब प्राप्ति हो गयी तो पीयूष कौन पियेगा? वह तो विलय हो गया। **'बिनु जल चकवा करे किलोरा'**– जब ये चकोर किलालें करने लगता है, जो मन गुरुमुख पर चकोर था, तब वो पण्डित है, पूर्ण ज्ञाता है। उसे अनुभूति मिल जाती है।

बैठा पंडित पढ़ै पुरान, बिनु देखे का करत बखान॥

'बैठा पण्डित'– अब चलायमान नहीं है, स्थिर है। उसको जगह मिल गयी। **'बैठा पंडित पढ़ै पुरान'**– पुराण पुरुष परमात्मा के अन्तराल में जो रहस्य छिपा है, वो पढ़ने लगता है।

'बिनु देखे का करत बखान।'

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ।।

जो इन आँखों से नहीं देखा जा सकता, कानों से नहीं सुना जा सकता, मन से महसूस नहीं किया जा सकता, मन-इन्द्रियों से अतीत है, उस **'बिनु देखे का करत बखान।'**– भगवान अनिवर्चनीय हैं, वाणी से निर्वचन नहीं किया जा सकता। भगवान अचिन्त्य हैं, चित्त और चित्त की लहर है तब तक वो नहीं है इसलिए अनिर्वचनीय है। अचिन्त्य है, बुद्धि की, मन की कल्पना से परे है। और मनुष्य के पास देखने के लिए यंत्र ही कौन बचा! इनसे वो देखा ही नहीं जा सकता। तो **'बिनु देखे का करत बखान।'** क्यों? अनुभव में वो सामने है।

पूज्य गुरु महाराज कहते थे– ''हो, **'हम कहीं आखिन की देखी, तुम कहो कागद की लेखी। तोर मोर मनवा एक कैसे होई।** (कबीर)' यह एक प्रत्यक्ष दर्शन है।'' तो, **'बिनु देखे का करत बखान।'**

कहै कबीर यह पद जो जानै, सोई संत सदा परमानै।।

कबीरदासजी कहते हैं– जो इस पद को जान ले, इस पद में बतायी हुई स्थितियों को जो परख ले, इन स्थितियों से जो भी गुजर जाय, वो संत है। सदा संत है, और प्रमाणित संत है। संत एक स्थिति है। नहीं तो दो आने की गेरू घोल लिया तो संन्यासी, दो आने की खड़िया पोत लिया तो बैरागी... संत बनने में क्या रखा है। इस पद में बतायी हुई जो स्थितियाँ हैं, जो इसको जान ले, प्राप्त कर ले, **'सोई संत'**– वह संत है। साधारण संत नहीं, **'सदा परमानै'**– सदा सदा के लिए प्रमाणित संत है। संत एक स्थिति है, सद्गुरु एक स्थिति है। यहीं उसका स्वरूप है। हर हालत में भजन करना ही होता है। और चीज भूल जाओ, कल कर लेना, भजन एक ऐसा कर्तव्य है, कल पर नहीं टाला जा सकता, अगले पल पर भी नहीं टाला जा सकता।

भजन-भजन तो सभी करते हैं, समय पर याद आता ही नहीं। समय पर याद आता है कि छोटा बच्चा कहाँ खेल रहा है, मुन्नी का ब्याह कहाँ ठीक

करें। कभी कुछ याद नहीं आता। उसे याद आता है जिसे निरन्तर सच्ची लगन हो। और काम कल पर टाला जा सकता है, चिंतन हर समय करना चाहिए। चलते-फिरते, उठते-बैठते, पानी पीते, खाना खाते हर समय स्मरण बना रहे, ओम्-ओम् अथवा राम-राम नाम याद आया करे, सोने में सुहागा है। सुबह-शाम गुरु महाराज को मन से प्रणाम कर लिया करो।

गीता आपका धर्मशास्त्र है। यदि गीता धर्मशास्त्र नहीं है तो भारत में धर्मशास्त्र है ही नहीं। विश्व में जो धर्मविहीन कबीला घूम रहा है तो वो है भारत, चाहे वो हिन्दू हो, चाहे सिख कहलाते हो, चाहे जैन। ये तो गुरुघरानों के पीछे सिमटा हुआ समाज है। लेकिन सबका जो मूल धर्मशास्त्र है, परम प्रभु भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख की वाणी 'गीता'। गीता संदेहमुक्त है। धर्म क्या, साधना क्या, कैसे करें, करने में किसका अधिकार है, एक साथ सभी समस्याओं का समाधान हो जायेगा, तीन-चार आवृत्ति अवश्य करें। यदि तीन-चार आवृत्ति कर लोगे, न संदेह है, न भविष्य में कभी होगा। फिर सृष्टि में कोई ऐसा फरेब नहीं कि आपका धर्म बिगड़ जाय। हमारी साधना का स्तर ऊँचा-नीचा होता है, धर्म कभी नष्ट नहीं होता। न छूने से, न खाने से, न भाषा बोलने से... कभी नहीं। भगवान श्रीकृष्ण का कहना है– अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं, सीमित फलरूपी दोष भी नहीं।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ (गीता, 2/40)

इस धर्म का स्वल्प अभ्यास महान जन्म-मृत्यु के भय से उद्धार करने वाला होता है। माया में कोई ऐसा वज्रापात नहीं जो उसे नष्ट कर दे, कुचल दे। सृष्टि में ऐसा कोई नहीं जन्मा जो उसको क्षति पहुँचा दे।

'खाय ना खूटे, चोर ना लूटे, दिन दिन बढ़त सवायो।
पायो जी मैंने राम रतन धन पायो॥'

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

'श्रीमद्भगवद्गीता' की साधना

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। (१३/२२)

वह पुरुष **'उपद्रष्टा'** – हृदय-देश में बहुत ही समीप, हाथ-पाँव-मन जितना आपके समीप है उससे भी अधिक समीप द्रष्टा के रूप में स्थित है। उसके प्रकाश में आप भला करें, बुरा करें, उसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह साक्षी के रूप में खड़ा है। साधना का सही क्रम पकड़ में आने पर पथिक कुछ ऊपर उठा, उसकी ओर बढ़ा तो द्रष्टा पुरुष का क्रम बदल जाता है, वह **'अनुमन्ता'**– अनुमति प्रदान करने लगता है, अनुभव देने लगता है। साधना द्वारा और समीप पहुँचने पर वही पुरुष **'भर्ता'** बनकर भरण-पोषण करने लगता है, जिसमें आपके योगक्षेम की भी व्यवस्था कर देता है। साधना और सूक्ष्म होने पर वही **'भोक्ता'** हो जाता है। **'भोक्तारं यज्ञ तपसाम्'**– यज्ञ, तप जो कुछ भी बन पड़ता है, सबको वह पुरुष ग्रहण करता है। और जब ग्रहण कर लेता है, उसके बाद वाली अवस्था में **'महेश्वरः'**– महान् ईश्वर के रूप में परिणत हो जाता है। वह प्रकृति का स्वामी बन जाता है; किन्तु अभी कहीं प्रकृति जीवित है तभी उसका मालिक है। इससे भी उन्नत अवस्था में वही पुरुष **'परमात्मेति चाप्युक्तो'**– जब परम से संयुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है। इस प्रकार शरीर में रहते हुए भी यह पुरुष आत्मा **'परः'** ही है, सर्वथा इस प्रकृति से परे ही है। अन्तर इतना ही है कि आरम्भ में यह द्रष्टा के रूप में था, क्रमशः उत्थान होते-होते परम का स्पर्श कर परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है।

– 'श्रीमद्भगवद्गीता' भाष्य 'यथार्थ गीता' से साभार

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट
न्यू अपोलो स्टेट, गाला नं- ५ और ११, मोगरा लेन (रेलवे सब वे के पास) अंधेरी (पूर्व),
मुंबई - ४०००६९. फोन - (०२२) २८२५५३००,भारत.
ई-मेल – contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट – www.yatharthgeeta.com